मूल्य 20 रुपये

चौथी दुनिया

दिल्ली रविवार 16 अगस्त 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

3 अपने हक़ की लड़ाई लड़ रहे हैं बलूच

5 माया और राहुल की तू-तू मैं-मैं

11 ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी हैं क़ुरानशरीफ़

बंगाल में आंधी

फोटो–*पीटीआई*

बिमल राय

देह पर नीले बॉर्डर वाली उजली साड़ी और पैर में हवाई चप्पल. पानी और कीचड़ भरी सड़कों पर चलते समय छींटें पड़ते हैं तो पड़ें, मगर उन्हें वहां जल्दी पहुंचना है. इसलिए कि जनता पुकार रही है. बंगाल की तीन दशकों की वाम राजनीति के कुरुक्षेत्र में यह चेहरा हर जगह दिखा है. नाकामियों से निराश नहीं हुई. जनता के दुख-दर्द को अपना समझा, वह भी तहे दिल से. आंसू निकले तो तहे दिल से. आम नेताओं की तरह घड़ियाली नहीं. जी हां, ममता बनर्जी की इसी सादगी, संयम और परिश्रम ने उन्हें एक कामयाब जननेता की कुर्सी पर बैठाया है. अब राज्य की सत्ता के काफी क़रीब दिख रहीं ममता अगले दो सालों में बंगाल की राजनीति की दिशा पलटने वाली हैं. 9 अगस्त 1997 को जब कोलकाता के नेताजी स्टेडियम में कांग्रेस का 80वां पूर्ण अधिवेशन चल रहा था, उसी समय ममता ने मेयो रोड के चौराहे पर गांधीजी की प्रतिमा के सामने अपना तृणमूल का पौधा रोपा. उस समय वह सिर्फ़ बंगाल कांग्रेस का अध्यक्ष पद मांग रही थीं, पर तृणमूल के टिकट पर सांसद बने सोमेन मित्र तब ममता के दुश्मन नंबर एक हुआ करते थे. राज्य युवा कांग्रेस के मुखिया के रूप में कार्य करते हुए ही उन्होंने एक तरह से बग़ावत का बिगुल फूंक दिया था. सोमेन से झगड़े की बड़ी वजह माकपा से उनकी क़रीबी ही थी. ममता जहां वाम के ख़िलाफ़ कड़े तेवर अपनाने के पक्ष में रहती थीं, वहीं ममता के राजनीतिक तेवर बग़ावती या एक तरह से कहें तो अतिवादी रहे. 1984 के लोकसभा चुनाव में जादवपुर सीट से खड़े माकपा नेता सोमनाथ चटर्जी को हराकर उन्होंने बंगाल की राजनीति में एक तरह से धमाका कर दिया था. उसके बाद ममता ने पीछे मुड़कर नहीं देखा.

बग़ावती तेवर के कारण भी दिखे. आठ अप्रैल 1992 को बंगाल कांग्रेस के अध्यक्ष पद के चुनाव में जब ममता पराजित हुईं, उनका क्षोभ पनपा. यह वैसा ही था कि सीनियर के मुक़ाबले किसी जूनियर को प्रोमोशन दे दिया जाए. उस समय सोमेन की संगठन पर पकड़ मज़बूत थी, मगर जनता में एक जुझारू नेता के रूप में सिर्फ़ ममता ही दिखती थीं. बंगाल की गलियों में इस घायल शेरनी की दहाड़ गूंजने लगी. 1993 में ममता ने कांग्रेस के समानांतर ट्रेड यूनियन का गठन कर लिया. इससे उनके पार्टी से अलग होने के संकेत मिलने शुरू हो गए. ममता ने युवा शाखा को अपने तरीक़े से संचालित करना शुरू कर दिया. 1993 में ममता नदिया जिले की एक बलात्कार पीड़िता को लेकर राइटर्स बिल्डिंग चली गईं. वहां मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने मिलने से इंकार कर दिया तो वह बसु के घर के सामने धरने पर बैठ गईं. 23 जुलाई को यहां हुए हंगामे और पुलिस फायरिंग में 13 युवा कांग्रेस कार्यकर्ता मारे गए और इसे लेकर पूरे राज्य में उन्होंने आंदोलन किया. तृणमूल हर साल इस दिन को शहीद दिवस के रूप में मनाती है.

1996 के विधानसभा चुनावों में आपराधिक छवि वाले नेताओं को विधानसभा का टिकट देने के मामले पर ममता ने गले में शाल का फंदा लगाकर आत्महत्या करने की कोशिश की. 1997 में अग्निकन्या ने कांग्रेस के संगठनात्मक चुनावों का बायकाट किया. इस तरह कांग्रेसी के रूप में 35 साल और विक्षुब्ध के रूप में छह साल गुज़ारने के बाद नौ अगस्त 1997 में उन्होंने तृणमूल कांग्रेस नाम से पार्टी बनाई. एक सक्रिय कांग्रेसी के तौर पर क़रीब 12 साल के कार्यकाल में ममता ने अपने आंदोलनों से बंगाल कांग्रेस में नेतृत्व के ख़ालीपन को भरा, क्योंकि सिद्धार्थ शंकर राय के बाद बंगाल कांग्रेस एक तरह से नेतृत्वहीन हो गई थी. यह भी सच है कि कांग्रेस में रहने के दौरान ममता की ताक़त का एक बड़ा हिस्सा आपसी लड़ाई में ही जाया हुआ. दिल्ली में बैठे कांग्रेस आलाकमान ने कभी ममता का खुले रूप में साथ नहीं दिया. राजीव गांधी का बुलडोजरी अनुशासन वाला युग ख़त्म होने के बाद जब पीवी नरसिंह राव ने कमान संभाली तो ममता को मनाने के काफी प्रयास हुए. मंत्री बनना भी ममता को रास नहीं आया. सोनिया जब उनके साथ हुईं तो सीताराम केसरी ने सोमेन के पक्ष में आकर मोर्चा संभाल लिया. बंगाल की राजनीति में रमे रहने की क़सम खा चुकीं ममता ने आख़िर मंत्री पद छोड़ दिया. तृणमूल के गठन के तुरंत बाद ममता ने बांग्ला बचाओ फ्रंट बना लिया और इसमें भाजपा को भी शामिल करने का ऐलान किया. इसी का बहाना बनाकर सोमेन ने उन्हें पार्टी से निकाले जाने की सिफ़ारिश की. आख़िर में मान-मनौवल के कई दौर जब फेल हो गए तो ममता ने 22 दिसंबर को अपने घर में आयोजित एक प्रेस कांफ्रेंस में कांग्रेस से अलग होने का ऐलान किया. तब ममता के हाशिये पर चले जाने की उम्मीद से ख़ुश कांग्रेसियों को शायद अंदाज़ा नहीं होगा कि एक दिन वही उनकी उठक-बैठक कराएंगी.

> **9 अगस्त 1997 को जब कोलकाता के नेताजी स्टेडियम में कांग्रेस का 80वां पूर्ण अधिवेशन चल रहा था, उसी समय ममता ने मेयो रोड के चौराहे पर गांधीजी की प्रतिमा के सामने अपना तृणमूल का पौधा रोपा. उस समय वह सिर्फ़ बंगाल कांग्रेस का अध्यक्ष पद मांग रही थीं, पर तृणमूल के टिकट पर सांसद बने सोमेन मित्र तब ममता के दुश्मन नंबर एक हुआ करते थे.**

मौत चाहे माकपा काडरों के हाथों हुई हो या पुलिस लॉक अप में, ममता ने हर आश्रित की आंखों के आंसू पोंछे. मूल्यों की राजनीति के लिए आत्महत्या तक की कोशिश, वाममोर्चा सरकार का मृत्युघंट बांधना, राइटर्स दखल अभियान, रैलियां और बंद जैसे कार्यक्रमों के दौरान ममता ने कई नाटकीय फ़ैसले लिए और उन्हें आलोचनाएं भी सहनी पड़ीं. ख़ासकर बंगाली भद्रलोक को लग रहा था कि ममता की राजनीति में वह गहराई नहीं है, जिससे बहुसंख्यक वोटरों का वह विश्वास जीत सकें. पर आम आदमी को ज़रूर लगा कि एक यही नेता है जो पुकारने पर उसके पास आती हैं. बंगाल मध्यवर्ग के क्रीमी लेयर को ममता का आंदोलन पार्षदनुमा लगता था, पर वह सीमांत आदमी को एक बार सोचने पर ज़रूर मजबूर करता था. एक क़ाबिल प्रशासक और गंभीर राजनेता ज्योति बसु के पूरे मुख्यमंत्रित्व काल में ममता को छोटे-छोटे मुद्दे ही मिले और उन्हीं के बूते उन्होंने विपक्ष की आवाज़ को ज़िंदा रखा. भले ही ज्योति बसु ने अपने पूरे मुख्यमंत्रित्व काल में ममता को वह लड़की कहकर ही संबोधित किया. पिछले 30 सालों में बंगाल कांग्रेस एक तरह से निष्क्रिय विपक्ष की ही भूमिका निभाती रही है. मुर्शिदाबाद के बाहुबली अधीर रंजन चौधरी को छोड़कर बंगाल

(शेष पृष्ठ 2 पर)

लेखन में भी है मां, माटी, मानुष की पुकार

ममता बनर्जी एक आक्रामक राजनेता के साथ-साथ एक संवेदनशील लेखिका व कवयित्री भी हैं. 17 बांग्ला व एक अंग्रेजी पुस्तक की रचयिता ममता के लेखन में वही सादगी और आक्रामकता है, जो उनके जीवन और राजनीति की शैली में दिखती रही है. राजनीति में मां, माटी, मानुष के नारे की चर्चा भले ही पिछले लोकसभा चुनावों में हुई हो, मगर उनकी रचनाओं में ये तीनों बहुत पहले से बख़ूबी चित्रित होते रहे हैं. 1996 में प्रकाशित कविता पुस्तक *मां* की पहली कविता ही मां को समर्पित है. वह लिखती हैं : *मायेर मुख स्वर्ग सुख, भूलिये देय सकल सुख, मायेर बदन मलिन होले सब होये जाये गोलमेल* (मां का चेहरा सामने रहे तो स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है. मां का शरीर जब मलिन होता है, तब सब कुछ गड़बड़ हो जाता है.) बांग्ला माटी से प्रेम का इज़हार करतीं ममता सोनार बांग्ला कविता में लिखती हैं – *आमि भालोबासी बांग्लार माटी, ए माटी पवित्र, ए माटी सोनार माटी* (मैं बांग्ला की मिट्टी से प्यार करती हूं, यहां की मिट्टी पवित्र है, यह मिट्टी सोने की है). *मानुष की पीड़ा* तो ममता की ज़्यादातर कविताओं में मुखरित है. हुगली जिले में पुलिस हिरासत से लापता हुए जूट मिल मज़दूर भिखारी पासवान, जिसके बारे में कहा जाता है कि पुलिसवालों ने उसे ठिकाने लगा दिया, के परिवारवालों की पीड़ा ममता ने फिरबे ना कविता में व्यक्त की है : – शोके विह्वल एक मा आर स्त्री /पथ चेये बसे आछे उन्मुख होये / भावछे तादेर एकांत आपनजन /हय तो वा फिरे आसबे / मां बले डाकबे, हठात क्षुधार्थ होये बलबे, मां खेते दाव, बड्ड खिदे पेयेछे. *परित्यक्त महिला* कविता में ममता जैसे रो पड़ती हैं : *समाजेर जादे परिचय किछु नेई, बाइरे जगते जादेर कोनो ठांव नेई, अंतरे जादेर अभिशप्त अश्रु झरे.* (समाज में जिनका कोई परिचय नहीं है. बाहर की दुनिया में जिनका कोई ठौर नहीं है. भीतर ही भीतर झरते हैं अभिशप्त आंसू.) भाजपा को साथ लेने से माकपा ने उनकी धर्मनिरपेक्ष छवि पर बार-बार सवाल उठाया, पर ममता अपनी हिंदू-मुसलमान कविता में लिखती हैं : *भागाभागी कोरे हय ना कखुनो हिंदू-मुसलमान, एशो आमरा गड़े तुली मानविकातार स्थान, एकी रक्तो हृदये मोरे, एकेई अश्रु दुःखे झरे, सवार एकेई प्रान.* इस तरह संग्रह की कुल 83 कविताओं में ममता ने मां, माटी, मानुष के प्रति अपने प्रेम और उनकी पीड़ा को आवाज़ दी है. पल्लवी, जनता दरबार, एकांते, अनुभूति, अशुभ संकेत, जन्माइनी, मानविक, क्रोकोडाइल आइलैंड, तृणमूल, सरणी, आजब छड़ा, शिशु साथी, गणतंत्रेर लज्जा, जागो बांग्ला (बांग्ला) और मदरलैंड (अंग्रेजी) पुस्तकें लिखकर ममता ने भले ही बांग्ला साहित्य में कोई उल्लेखनीय जगह नहीं बनाई है, पर उनकी अभिव्यक्ति की सादगी और उनकी बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन तो हो ही जाते हैं. बच्चों के लिए लेखन और चित्रकला के प्रति उनका प्रेम अब तक बरकरार है. दिन में राजनीति और रात में लेखन- यही ममता की दिनचर्या है. वर्ष 1995 में प्रकाशित पुस्तक *उपलब्धि* में ममता ने जैसे अब तक के राजनीतिक जीवन की आत्मकथा लिखी है. पहले ही पन्ने पर अपनी आक्रामक राजनीति के संबंध में सफाई देती हैं ममता, लिखती हैं- अनेक आलोचक कहते हैं कि मैं काफी आवेग में रहती हूं- यही मेरी सबसे बड़ी भूल है. हां, मैं आलोचकों से पूरी तरह सहमत हूं. मेरे प्रवाहमान जीवन के हर मील के पत्थर पर आवेग के निशान हैं. आवेग का उत्स या जन्मस्थली हृदय की अनुभूति से है. जो अनुभति मनुष्य को जाति, राष्ट्र, समाज व मानवता के कल्याण के लिए प्रवृत्त करता है- वही तो आवेग है. पुस्तक में ममता ने कांग्रेस में रहने के दौरान केंद्रीय नेताओं से उनके रिश्ते और बंगाल के एक गुट के साथ हुई खींचतान का पूरा ब्यौरा दिया है. पुस्तक में तृणमूल के गठन और उसके बाद की राजनीतिक घटनाओं का पूरा लेखा-जोखा है. पुस्तक के आख़िर अध्याय में ममता बंगाल में 19 वीं सदी के नवजागरण को याद करती हैं और आह्वान करती हैं कि बंगाल में भी वैसा ही एक नवजागरण हो. वह लिखती हैं- समय की गति के साथ ताल मिलाकर धरती आज तेज़ी से आगे बढ़ रही है...समय पर नज़र रखना बहुत ज़रूरी है. तब फिर समय नष्ट न करके बंगाल में एक ऐसा ज्वार आए जिसके प्रवाह में सारी व्यर्थ चीज़ें बह जाएं. हर क्षेत्र में सफलता और विकास दिखे और फिर बंगाल के लोग गर्व से कह सकें कि बंगाल जो आज सोचता है, अगले दिन भारत वही सोचता है.

बिमल राय

feedback@chauthiduniya.com

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

ये तेरा घर, ये मेरा घर

यह विस्मय की बात है कि लंदन के इंडिया हाउस में रह रहे मौजूदा राजनयिक उसे छोड़ने में ना-नुकुर कर रहे हैं. या यूं कहें कि वह शायद अभी तक इंडिया हाउस छोड़ने का मन ही नहीं बना पाए हैं. यह कहना कि यह किसी राजनयिक गतिरोध की स्थिति है, शायद अतिशयोक्ति होगी. हालांकि इंग्लैंड में भारत के हाई कमिश्नर एसएस मुखर्जी का कहना है कि उन्हें पूर्व विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी ने भरोसा दिलाया था कि अभी उन्हें दो साल लंदन में बने रहना है. अब जब उनकी जगह किसी और के नाम की घोषणा हो चुकी है तो वह लंदन छोड़ना नहीं चाहते, लेकिन इसे वह खुलकर कह भी नहीं सकते.

नए-पुराने : एसएस मुखर्जी और नलिन सूरी

ज़ाहिर है, नए विदेश मंत्री एस एम कृष्णा यह सब नहीं सुनने वाले. उन्होंने तो मुखर्जी की जगह नलिन सूरी के नाम की घोषणा कर दी है. इस तरह की राजनयिक खींचतान में किसी को समझ में नहीं आ रहा है कि क्या होनेवाला है? क्या मुखर्जी की इस ना-नुकुर के पीछे सिर्फ़ लंदन की गर्मी के लिए उनका प्यार है और यह वक़्त शांति से बीत जाएगा? ख़ैर, जल्द ही पता लग जाएगा कि यह क्या महज़ बस देर से पहुंचे सामान जैसा मामला है?

बंगाल में परेशान हैं बाबू

पश्चिम बंगाल की वाममोर्चा सरकार अपने सबसे बुरे चुनावी प्रदर्शन के बाद अब मरम्मत में जुटी है. इसके लिए वह अपने बाबुओं पर सख्ती दिखा रही है. उसने एक नया आदेश जारी किया है, ताकि बाबू लोगों को उनकी तरक़्क़ी आसानी से नहीं बल्कि मेहनत करने पर मिले. यानी आईएएस और आईपीएस बाबुओं को कड़े नियमों को पूरा करने के बाद ही तरक़्क़ी मिल सकेगी. एक सीनियर बाबू को अब पांच साल में कम-से-कम तीन बार उल्लेखनीय प्रदर्शन करना होगा. जो यह नहीं कर पाएंगे, उनके लिए रास्ते बंद रहेंगे और उनसे नीचे वालों को तरक़्क़ी मिलेगी. हाल में ही दो बाबुओं असित बरन चक्रवर्ती और सतीश अग्रवाल को क्रमश: अतिरिक्त मुख्य सचिव और पुलिस महानिदेशक के पदों के लिए इसी वजह से तरक़्क़ी नहीं मिली.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

के वी रामकृष्णन को नया कार्यभार

के वी रामकृष्णन आंध्र प्रदेश काडर के 1989 बैच के आईएएस अधिकारी हैं. जल्द ही उन्हें नई ज़िम्मेदारी मिलने वाली है. वह सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय के अंतर्गत खादी और ग्राम उद्योग आयोग (केवीआईसी) में वित्त सलाहकार के तौर पर कार्यभार संभालेंगे.

ख़त्म हुआ अमृत लाल मीणा का इंतज़ार

बिहार काडर के 1989 बैच के आईएएस अधिकारी अमृत लाल मीणा के लिए अच्छी ख़बर है. जल्द ही उनकी नियुक्ति खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय में संयुक्त सचिव के तौर पर होगी. वह गौतम सान्याल (सीएसएस) की जगह लेंगे. सान्याल की नियुक्ति रेल मंत्री के विशेष कार्याधिकारी (ओएसडी) के तौर पर हुई है.

अरविंद मेहता चले वाणिज्य मंत्रालय

अरविंद मेहता (हिमाचल प्रदेश काडर, 1984 बैच) वर्तमान में हिमाचल प्रदेश के योजना और वित्त विभाग में मुख्य सचिव हैं. सूत्रों के मुताबिक, बहुत जल्द उनकी नियुक्ति वाणिज्य मंत्रालय में होने वाली है. वह जयंत दासगुप्ता का स्थान लेंगे, जो बिहार काडर के 1981 बैच के आईएएस अधिकारी हैं.

बंगाल में आंधी

पृष्ठ एक का शेष

कांग्रेस का कोई नेता ऐसा नहीं हुआ, जो माकपा की संगठनात्मक ताक़त को चुनौती दे सके. मुख्यधारा की राजनीति में कांग्रेस ने जो शून्य पैदा किया, उसे ममता ने ही भरा. करोड़ों का वक्फ घोटाला हो या पंचायती योजनाओं के घोटाले, ममता ने हर मंच पर उठाने की कोशिश की. पुलिस हिरासत में मारे गए भिखारी पासवान के मामले में ममता के आंदोलन की गूंज पूरे देश में सुनी गई.

राजनीति की शुरुआत से ही ममता आम आदमी से जुड़े मुद्दे उठाती रही हैं. युवा कांग्रेस में रहने के दौरान वह पार्टी की राज्य इकाई को विश्वास में लिए बिना बंद, धरना व दूसरे आंदोलनों का ऐलान कर देती थीं और इसी से प्रदेश नेतृत्व से उनका विवाद होता था. सिंगुर में टाटा के नैनो कारखाना लगाने के समय ममता का रुख़ उतना कड़ा नहीं था, पर जब उन्हें लगा कि बहुत सारे किसान अनिच्छुक हैं और सरकार उन्हें पर्याप्त मुआवज़ा दिए बिना ज़मीन ले रही है तो उन्होंने आंदोलन तेज़ कर दिया. उन्हें व पार्टी के नेताओं को कई बार सिंगुर जाने से रोका गया और इसी के साथ उनका आंदोलन और तेज़ होता गया. फिर नंदीग्राम के केमिकल हब के लिए भूमि अधिग्रहण की अधिसूचना जारी होते ही जो आंदोलन भड़का और जो पुलिस फायरिंग हुई, उसके ख़िलाफ़ ममता का आंदोलन पूरे दक्षिण बंगाल में फैल गया. समय के साथ-साथ ममता में मुद्दों की समझ भी बढ़ती गई और 2008 के पंचायत चुनावों के बाद हाल के संसदीय चुनावों की कामयाबी से उनका उत्साह भी तेज़ी से बढ़ता जा रहा है. पिछले लोकसभा चुनावों में वाममोर्चा ने ममता के साथी बदलने को भी प्रचार का एक मुद्दा बनाया था. तृणमूल के गठन के बाद 1998 में उन्होंने राजग का दामन थामा, मगर ईंधन की कीमतें बढ़ाने के विरोध में उससे नाता तोड़ लिया. वह फिर लौटीं, मगर तहलका मामले पर हो-हल्ले में शामिल होते हुए उन्होंने 2001 में कांग्रेस से गठजोड़ कर लिया. इस साल आए चुनाव परिणामों का करंट लगने के बाद ममता फिर राजग में चली गईं. पूर्व रेलवे के विभाजन के मामले पर फिर उनके तेवर बग़ावती हो गए. बहुत मनुहार के बाद वह मंत्री बनीं, पर मनचाहा विभाग नहीं मिलने के कारण चुनाव के ठीक पहले तक कोई मंत्रालय नहीं लिया. 2004 में ऐसा भी समय आया, जब वह अपनी पार्टी से एकमात्र सांसद के रूप में ख़ुद ही लोकसभा में पहुंच पाईं. भले ही कोई इसे राजनीतिक अवसरवाद कहे, नीतियों की अस्थिरता कहे या उनकी धर्मनिरपेक्षता पर सवाल उठाए, ममता ने विपक्षी एकता के लिए ही यह सब किया. भाजपा से हाथ मिलाने के पीछे उनकी एक मजबूरी यह भी रही कि वह किसी भी क़ीमत पर माकपा को टक्कर देते रहना चाहती थीं. पर आज फ़िज़ा बदली हुई है और ममता को काफी क़रीब लग रही है मुख्यमंत्री की कुर्सी और यह सब जनता का साथ मिलने की वजह से संभव होता दिख रहा है.

हम देश के कुछ नेताओं, जैसे नरेंद्र मोदी, लालू प्रसाद और मायावती की मिसाल लें. नरेंद्र मोदी की लोकप्रियता उनके कट्टर हिंदुत्व और विकास के बूते पर है, जबकि मायावती की लोकप्रियता जातिगत समीकरणों की वजह से बढ़ी. ब्राह्मण-दलित के अवसरवादी गठजोड़ की वजह से माया मैडम अपने बूते पर लखनऊ की कुर्सी पर बैठ पाई हैं. लालू प्रसाद राजनीति के शुरुआती दौर में अपनी सादगी और जनता जैसा दिखने व बोलने के कारण लोकप्रिय हुए. एक समय ऐसा लगा कि सबसे ज़्यादा समय तक शासन करने के ज्योति बसु के रिकार्ड को भी तोड़ेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ. जन का विश्वास हासिल करने के बाद जनकल्याण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता कितनी है, जगज़ाहिर हो गई. दिल्ली जाने से पहले वह बिहार में निज कल्याण के लिए पत्नी राबड़ी को बैठा गए. जातिवादी समीकरणों पर ही भरोसा किया.

मगर, बंगाल में समीकरण कुछ अलग रहे हैं. विपक्ष की सत्ता में वापसी का एक ही मंत्र माना जाता था-एकता. भाजपा को साथ लेते हुए उन्होंने यही सोचा कि बंगाल में धर्मनिरपेक्षता कोई बड़ा मुद्दा नहीं है. हालांकि खटका लगा रहता था और इसी वजह से वह साथी भी बदलती रहीं. राज्य में भाजपा कोई बड़ी राजनीतिक ताक़त नहीं है और कांग्रेस से तालमेल बैठ जाने से रही-सही कसर भी पूरी हो गई है. सही मुद्दों को लेकर जनता के बीच जाने और उनका विश्वास हासिल करने के बाद अब ममता को एक कामयाब जननेता का दर्जा हासिल हो गया है.

एक समानता चारों में है. चारों नेता अपने-अपने राज्यों में किसी ऐसे नेता को नहीं उभरने देना चाहते हैं, जो भविष्य में उनके लिए चुनौती बन सके. यही वजह है कि कोटे के हिसाब से ममता को दो कैबिनेट बर्थ मिल सकते थे, पर उन्होंने एक ही बर्थ लिया. तृणमूल अब आरोप से भी उबर रही है कि उसमें आंतरिक लोकतंत्र नहीं है, बल्कि वह हमेशा से आंतरिक अनुशासन बहाल रखने के पक्ष में रही हैं. आज चुनावी कामयाबियों से पैदा हुए आत्मविश्वास पर सवार ममता ख़ुद को भावी मुख्यमंत्री के रूप में देख रही हैं. बांग्ला भद्र लोक को भी लगने लगा है कि ममता अब परिपक्व हो गई हैं. माकपा के बुलडोजरी रवैये से नाराज़ बांग्ला बुद्धिजीवियों का एक बड़ा हिस्सा खुले रूप में ममता के साथ है. कभी अपने आगे दूसरों की बात नहीं सुनने वाली ममता अब हर महीने बुद्धिजीवियों से मिलकर उनसे सलाह-मशविरा कर रही हैं. बता दें कि नंदीग्राम गोलीकांड के बाद बंगाल के कई साहित्यकारों व कलाकारों ने अपने पुरस्कार लौटा दिए थे.

ममता का आत्मविश्वास ही है कि उन्होंने कई बार कांग्रेस को आत्मसमर्पण करने पर मजबूर किया. लोकसभा चुनावों में सीटों के बंटवारे के समय उन्होंने दक्षिण बंगाल में कांग्रेस को एक भी सीट नहीं दी. 18 अगस्त को कोलकाता के सियालदह और बऊबाजार विधानसभा सीटों पर होने वाले उपचुनावों के लिए काफी नाक रगड़ने के बाद भी उन्होंने कांग्रेस को एक सीट नहीं दी. ऐसी ही रगड़ाई ममता ने भाजपा की थी. सीटों के बंटवारे के समय हुई रगड़ाई से क्षुब्ध एक भाजपा नेता ने कभी कहा था कि अब उन्हें सोमेन मित्र से श्रद्धा हो गई है, जिन्होंने बरसों ममता को झेला है. हालांकि इसे ममता अपना हक़ मानती रही हैं, क्योंकि आंधी-पानी, जलती दुपहरिया व धूल भरे रास्तों पर जनता से जुड़े मुद्दों पर संघर्ष किया है, जीवन के 30 साल राजनीतिक तपस्या की है. राज्य कांग्रेस को माकपा की बी-टीम वह बहुत पहले से कहती आ रही थीं. दिल्ली में धर्मनिरपेक्ष साथी की ज़रूरत महसूस करने वाले आलाकमान को बंगाल की क़ीमत पर दिल्ली की कुर्सी ज़्यादा रास आई. ममता को इसी से ज़्यादा चिढ़ रही. दिल्ली की मजबूरियों ने आलाकमान को भले ही रोके रखा, पर ममता के सामने ऐसी कोई मजबूरी नहीं थी. वह बहुत पहले तय कर चुकी हैं कि उनका मक़सद बंगाल से वामपंथियों को उखाड़ना है.

यही वजह है कि वह पार्टी के सारे मंत्रियों को सप्ताह में पांच दिन बंगाल में गुज़ारने के लिए कहा है. लोकसभा चुनावों के बाद से जहां -जहां राजनीतिक हिंसा हुई है, ममता ने हर जगह जाने की कोशिश की है. वहां वह पीड़ितों के आंसू पोछ रही हैं. एक चतुर राजनेता की तरह ममता ने बंगाल में रेलवे की कई परियोजनाओं की घोषणा की है, ताकि लोगों को रोज़गार मिल सके और लोगों के सामने यह संदेश जाए कि वह उद्योग विरोधी नहीं हैं. वह तो कृषि और उद्योग की बीच एक संतुलन चाहती हैं. माकपा से ग़लती यह हुई कि कृषि और भूमि सुधार के क्षेत्र में शानदार कामयाबी हासिल करने के बाद वह औद्योगिकीकरण के पूंजीवादी रास्ते पर चल पड़ी. इससे उसके सर्वहारा वर्ग को झटका लगा. जबरन भूमि अधिग्रहण की नीति ने गांव के लोगों की नाराज़गी और बढ़ा दी है. मां, माटी, मानुष का नारा सचमुच बंगाल में चमत्कार करने वाला है.

feedback@chauthiduniya.com

फोटो-पीटीआई

फोटो-पीटीआई

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 22, 10 अगस्त-16 अगस्त 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनर्प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

अपने हक़ की लड़ाई लड़ रहे हैं बलूच

मनीष कुमार

तीन अगस्त को पूरा बलूचिस्तान मानो थम-सा गया. दो अगस्त को पाकिस्तान की सेना की कार्रवाई और बलूच नेताओं की गिरफ़्तारी के ख़िलाफ़ बलूच रिपब्लिकन पार्टी ने बंद का एलान किया था. बलूचिस्तान की राजधानी क्वेटा की सड़कें सूनी थीं और इस्लामाबाद में प्रधानमंत्री बलूचिस्तान पर भारत के ख़िलाफ़ कूटनीतिक जीत का ढिंढोरा पीट रहे थे. नेता हिंदुस्तान के हों या पाकिस्तान के, हक़ीक़त छुपाने में माहिर होते हैं. सच्चाई तो यह है कि पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में पिछले कुछ वर्षों से हिंसा जारी है. यहां स्थानीय राष्ट्रवादी संगठन राजनीतिक और आर्थिक अधिकार चाहते हैं. बलूचिस्तान के राष्ट्रवादी संगठन पंजाबियों के प्रभुत्व का विरोध कर रहे हैं. उनके अनुसार पाकिस्तान की सरकार बलूचिस्तान के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रही है, जिसका फ़ायदा पंजाब के लोग उठा रहे हैं. उन्हें पंजाबियों द्वारा नियंत्रित पाकिस्तान से न्याय की उम्मीद नहीं है. वे कहते हैं कि अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा या फिर मरना होगा. ज़्यादातर बलूची नेता शांतिपूर्ण आंदोलन के ज़रिए अपने अधिकारों को हासिल करना चाहते हैं, लेकिन वे यह भी कहते हैं कि अगर ज़रूरत पड़ी तो बंदूक उठाने में भी वे नहीं झिझकेंगे.

पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और अरब सागर के बीच का इलाक़ा बलूचिस्तान कहलाता है. पाकिस्तान के दक्षिण-पश्चिम का ऐसा इलाक़ा जहां ज़िंदा रहने के लिए लोगों को जद्दोज़हद करनी पड़ती है. यह एक रेगिस्तानी इलाक़ा है, जहां रेत नहीं है, पहाड़ हैं. बलूचिस्तान के ज़्यादातर इलाक़ों में पानी की समस्या है. औरतें पांच से दस मील दूर हर रोज़ पानी लाने जाती हैं. बलूच औरतों की आधी ज़िंदगी एक बाल्टी पानी लाने में ही गुज़र जाती है. बलूचिस्तान में पांच प्रतिशत से भी कम लोगों तक नल का पानी पहुंचा है और महिलाओं की साक्षरता की दर केवल 15 प्रतिशत है. बलूचिस्तान में पानी की निरंतर ख़राब होती व्यवस्था के कारण काफ़ी सारी ज़मीन उजाड़ हो चुकी है, जिसे लेकर भी असंतोष है. प्रशासनिक हिसाब से भी बलूचिस्तान की हालत ख़राब है. प्रांत का 80 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा क़बाइली क्षेत्र माना जाता है, जहां विशेष क़ानून लागू हैं, जिन्हें स्थानीय लोग पक्षपातपूर्ण मानते हैं. पुलिस के पास अधिक संसाधन नहीं हैं. इलाक़े में अभी भी कई लोग अपना जीवन चोरी-डकैती कर चलाते हैं. बलूचिस्तान का इलाक़ा खनिजों का भंडार है. यहां तांबा, पेट्रोलियम, यूरेनियम, सोना, जस्ता, और लेड का भंडार है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि ये समंदर के किनारे हैं, जो व्यापार के लिए सबसे लाभदायक है.

बलूचिस्तान दुनिया के महत्वपूर्ण इलाक़ों में से एक है. यह सिर्फ़ पाकिस्तान की बेरुख़ी का ही शिकार नहीं है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति की बिसात का एक अहम मोहरा भी है. बलूचिस्तान गैस के भंडार के हिसाब से पाकिस्तान में बड़ा महत्व रखता है. वहां सुई नामक जगह पर मिलनेवाली गैस से पूरे पाकिस्तान की आधी से अधिक ज़रूरत पूरी होती है. यहां पेट्रोलियम का भंडार तो है ही, साथ ही दुनिया की दो सबसे बड़ी गैस पाइपलाइन भी बलूचिस्तान से गुज़रती हैं. ईरान और पाकिस्तान के लिए बलूचिस्तान में चल रहे आंदोलन की चिंता से ज़्यादा वहां की पेट्रोलियम का ख़ज़ाना और गैस पाइपलाइन की सुरक्षा है. यही वजह है कि इस इलाक़े पर पूरी दुनिया की नज़र है. बलूचिस्तान में अशांति का मतलब है-पेट्रोलियम और गैस पाइपलाइन में रुकावट. यही वह इलाक़ा है जो सेंट्रल एशिया को समंदर से जोड़ता है. यह कहा जा सकता है कि आज दुनिया का सबसे अहम इलाक़ा यही है, क्योंकि यहां अमेरिका, चीन, भारत, सेंट्रल एशिया आदि बड़े देशों के हित जुड़े हैं. यहां पर चल रहे विद्रोह को कोई अनदेखा करने की भूल नहीं कर सकता. बलूचिस्तान में 1970 के दशक में भी सशस्त्र विद्रोह हुआ था, लेकिन तब ईरान की सहायता से उसे दबा दिया गया. अब संघर्ष फिर शुरू हो गया है, लेकिन इस बार यह विद्रोह कई मायने में अलग है.

सन 1410 में अमीर मीरो ने बलूचिस्तान राष्ट्र की स्थापना की थी. उन्होंने मकरान, खारान, चागै, सागेर जालावान और लसबेला के बलूचियों को एकजुट किया. 1410 के बाद से 35 ख़ान और राजाओं ने बलूचिस्तान पर राज किया है. इतिहाकारों का कहना है कि बलूच इस इलाक़े के मूल निवासी हैं. कुछ यह भी मानते हैं कि वे कई सदी पहले सीरिया से आए हैं. अमीर मीरो ने पहली बार बलूचिस्तान को एक राष्ट्र का रूप दिया. जब अंग्रेज भारत पहुंचे तब तक बलूचिस्तान एक स्थापित और संघीय राज्य था. इतिहासकारों का मानना है कि विभाजन के वक़्त कलात के राजा मीर अहमद यार ख़ान ने अंग्रेजों के साथ एक समझौता किया था. यह समझौता 4 मार्च 1947 को हुआ. इस समझौते में दो मुख्य वातें हैं. पहली यह कि पाकिस्तान की सरकार ने कलात को एक आज़ाद राष्ट्र माना था और दूसरी बात यह कि अंग्रेजों को दी गई बलूचिस्तान की ज़मीन पर अंतिम निर्णय के लिए बातचीत होनी थी. कलात के राजा ने बलूचिस्तान को एक आज़ाद देश घोषित कर दिया, लेकिन यह आज़ादी सिर्फ़ दो सौ पच्चीस दिन तक ही टिक पाई. एक अप्रैल 1948 में पाकिस्तान की सेना ने कलात में राजा के महल को घेर लिया और अहमद यार ख़ान को गिरफ़्तार कर लिया और उनसे बंदूक की नोक पर पाकिस्तान से विलय पर स्वीकृति ले ली. पाकिस्तान की सैनिक कार्रवाई से बलूचिस्तान के लोग नाराज़ हो गए. वहां की जनता पाकिस्तान के साथ नहीं रहना चाहती थी. तब से आज तक बलूचिस्तान में लोग आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं. 1947 के बाद से बलूचिस्तान का इतिहास पाकिस्तान के ख़िलाफ़ आंदोलन और पाकिस्तानी फौज के दमन की कहानी है.

1947 से बलूचिस्तान पाकिस्तान का एक दाग़दार राज्य रहा, पाकिस्तानी हुक़ूमत की आंखों का कांटा बना रहा. ग़रीबी, भुखमरी, शोषण और दमन यहां रोज़मर्रा की ज़िंदगी का हिस्सा हैं. समाज में उथल-पुथल होती है, तो कोई हारता है, तो कोई जीत जाता है. आज़ादी की लड़ाई, विभाजन और उसके बाद बदलते हुए सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में बलूचिस्तान हारता ही आ रहा है. वहां के लोग ठगे से महसूस करते हैं. लेकिन अब बलूचिस्तान के लोग कोई भी समझौता करने के लिए तैयार नहीं हैं. बलूचियों को लगता है कि बलूचिस्तान में विकास के काम स्थानीय लोगों के लिए नहीं बल्कि पाकिस्तान के अमीरों और व्यापारियों के लिए किए जा रहे हैं. वे कहते हैं कि जो भी उद्योग लगाए जा रहे हैं, उनमें बलूचियों की हिस्सेदारी नहीं है. ग्वादर पोर्ट को चीन के लिए बनाया गया है, ताकि सेंट्रल एशिया की संपदाओं का वह दोहन कर सके. उसका फ़ायदा बलूचिस्तान की आम जनता के लिए नहीं है. वहां बड़ी-बड़ी कॉलोनियां बसाई जा रही हैं, लेकिन बलूची वहां के मालिक के बजाय नौकर होंगे.

बलूचिस्तान के नेताओं को लगता है कि अब वक़्त आ गया है, जब उन्हें आज़ादी की अंतिम लड़ाई लड़नी है. यहां आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाले अलग-अलग संगठन हैं. बलूचिस्तान के राजनीतिक दल हैं, जो शांति और प्रजातांत्रिक संघर्ष के ज़रिए अधिकार के लिए लड़ रहे हैं. कुछ लोगों ने सैनिक कार्रवाई के ख़िलाफ़ हथियार उठा लिए हैं. कुछ ने इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस में गुहार और विदेश में मौजूद बलूच समुदाय के लोगों के द्वारा यूरोप और अमेरिका में प्रदर्शन का रास्ता अपनाया है. इसके अलावा कुछ नौजवानों ने इंटरनेट को आज़ादी का हथियार बनाया है. वे बलूचिस्तान में सैनिकों की कार्रवाई, हत्या और ज़ुल्म की हर कहानी इंटरनेट के माध्यम से पूरी दुनिया तक पहुंचा रहे हैं.

पाकिस्तान की सरकार कहती है कि बलूचिस्तान में जो लोग आंदोलन कर रहे हैं, वे क़बाइली सरदार हैं, जिनकी हुक़ूमत और शासन ख़त्म हो गए हैं. यही वजह है कि सरकार ने जिगरा पर प्रतिबंध लगा दिया था. स्थानीय लोग मानते हैं कि साल दर साल स्थानीय क़बाइली सरदारों का लोगों पर प्रभाव कम होता गया है. लेकिन उस सत्ता-शून्यता को पूरा करने के लिए न तो कोई कुशल प्रशासन है, न ही ऐसे राजनेता जो प्रांत को पाकिस्तान की मुख्यधारा से जोड़ सकें. बलूचिस्तान की युवा पीढ़ी बेरोज़गार है, निराश है, वह नेतृत्व विहीन हो चुकी है. ऐसे में बलूचिस्तान में विद्रोहियों को बड़ी आसानी से सदस्य मिल जाते हैं. बलूचिस्तान में जो संघर्ष हो रहा है उसमें कई हथियारबंद गुट हैं. उसके सदस्य बलूचिस्तान के युवा हैं. सरकार कहती है कि ये संगठन आंतकवादी हैं और अशांति को हवा देते हैं. सवाल यह नहीं है कि ये गुट जो कर रहे हैं, वह सही है या ग़लत. दरअसल, पाकिस्तान की सरकार को यह देखना पड़ेगा कि बलूचिस्तान में इतने सारे लोग क्यों इन गुटों और संगठनों के साथ हैं.

बंदूक उठाने वाले बलूची कोई अनपढ़ और क़बाइली नहीं हैं. इनमें युनिवर्सिटी के छात्र, डाक्टर्स, इंजीनियर, अमीर घरों के बच्चे, वकील आदि हैं. ये लोग अंग्रेजी में बात करते हैं. साथ ही नई टेक्नोलॉजी से अच्छी तरह से वाक़िफ़ हैं. यही वजह है पाकिस्तान की सरकार को इंटरनेट की पचास से भी ज़्यादा बेवसाइट को बंद करने का हुक्म देना पड़ा. इन वेबसाइटों पर बलूचिस्तान में सैनिक कार्रवाई के वीडियो भी थे. बलूची नेता भी आधुनिकता से वाक़िफ़ हैं. वे कहते हैं कि आज़ादी के लिए हमें पुराने संस्थानों की ज़रूरत भले पड़े, लेकिन आज़ादी मिलने के बाद बलूचिस्तान में क़बाइली सरकार नहीं होगी. यहां भी दूसरे देशों की तरह आधुनिक राज्य की स्थापना होगी. यहां के सारे लोगों को वही राजनीतिक और सामाजिक अधिकार होंगे जो दुनिया के दूसरे प्रजातंत्रिक देशों में हैं.

बलूचिस्तान के लोगों की सबसे बड़ी समस्या है कि उनमें राष्ट्रीय चेतना देर से आई है. अब वे जिस बलूचिस्तान के बारे में बात कर रहे हैं, वह पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और ईरान की सरहदों के भीतर तक फैला है. आज़ाद बलूचिस्तान का मतलब है, इन तीनों देशों का विभाजन- यह मुश्किल भी है और ख़तरनाक भी. इसके अलावा बलूचिस्तान का समाज भी अलग-अलग संप्रदायों, जनजातियों, क़बीलों और बोलियों में बंटा है. इसका फ़ायदा पाकिस्तान और ईरान की सरकारें उठाती हैं. बलूचियों को सबसे पहले अपनी राष्ट्रीयता को अपनी पहचान बनाने की ज़रूरत पड़ेगी.

बलूचियों का आंदोलन बहुआयामी है. इस बार का आंदोलन पहले से काफी अलग है. पहले की लड़ाई को पाकिस्तान यह कह कर टाल देता था कि बलूचिस्तान के कुछ क़बाइली और सामंती नेता हैं जो अपने हित के लिए वहां हिंसा फैलाते हैं. पाकिस्तान और बलूचिस्तान के लोगों सरकार की दलीलों को मान भी लेते थे. अब ज़माना बदल गया है. बलूचिस्तान के लोग पढ़ने लगे हैं. पाकिस्तान के हर विश्वविद्यालय में बलूची छात्र हैं. बलूचिस्तान के समाज में एक पढ़ा-लिखा तबक़ा खड़ा हो चुका है-जो डॉक्टर हैं, इंजीनियर हैं, प्रोफेसर हैं. बलूचिस्तान के बारे में इंटरनेट पर हर तरह की जानकारी मौजूद है. हैरानी की बात यह है कि ऐसी सैकड़ों वेबसाइट्स बलूच समुदाय के लोग चलाते हैं.

बलूचिस्तान में शांति बहाल होने का एक ही तरीक़ा है कि इसका कोई राजनीतिक हल निकाला जाए. पाकिस्तान इस बात को माने कि वहां विद्रोह हो रहा है. लोग सरकार से नाराज़ हैं और अलग राष्ट्र की मांग कर रहे हैं. अगर पाकिस्तान यह मान लेता है कि बलूचिस्तान में सरकार की तरफ़ से कुछ ग़लतियां हुईं हैं तो बातचीत से रास्ते खुलेंगे. बलूचिस्तान की लोगों की समस्या और उसके समाधान पर कुछ हल निकालने की दिशा में क़दम उठाए जा सकेंगे. ऐसा करने से बलूचिस्तान का राजनीतिक हल निकल सकता है. अगर पाकिस्तान ऐसा नहीं करता है, तो आगे जाने के सारे रास्ते बंद हैं. कहते हैं, जहां चाह वहां राह. रास्ते तो हैं लेकिन क्या पाकिस्तान की सरकार इतनी स्वतंत्र है कि वह आगे बढ़ कर बलूचिस्तान के लोगों से बातचीत करे और बलूचिस्तान में प्रजातंत्र को मज़बूत कर सके.

manish@chauthiduniya.com

बलूचिस्तान के मिलिटेंट ग्रुप

बलूचिस्तान लिबेरेशन आर्मी

यह बलूचिस्तान का सबसे बड़ा मिलिटेंट संगठन है. इस संगठन का मक़सद बलूचिस्तान को एक संप्रभु राष्ट्र बनाना है. यह पाकिस्तान से अलग होकर बलूचिस्तान की एक पहचान बनाना चाहते है. इस संगठन के सदस्य बलूच समुदाय के हैं जिनमें ज़्यादातर मारी जनजाति के लोग हैं. ये लोग बलूचिस्तान में मौजूद पंजाबियों और पाकिस्तानी सेना पर हमला करते हैं. 2000 में बलूच लिबरेशन आर्मी का नाम तब सामने आया, जब इस संगठन में बलूचिस्तान के बाज़ारों और रेलवे लाइन में हुए बम धमाके की ज़िम्मेदारी ली थी. बलूच लिबरेशन आर्मी का नाम पाकिस्तान और ब्रिटेन के घोषित आंतवादी सगठनों में है.

बलूचिस्तान लिबरेशन फ्रंट

बलूचिस्तान लिबरेशन फ्रंट की स्थापना 1964 में जुम्मा ख़ान मरी ने दमशकस में की थी. यह संगठन 1969-80 काफी सक्रिय रहा. इस संगठन को अरब के देशों से सहायता मिलती है. 1973 में जुल्फिकार अली भुट्टो ने बलूचिस्तान की सरकार को बर्ख़ास्त किया था, तब पूरे बलूचिस्तान में पाकिस्तानी सेना पर हमले हुए. उस संघर्ष का मुख्य केंद्र बलूचिस्तान लिबरेशन फ्रंट था. पाकिस्तान की सेना ने 80 हज़ार सैनिकों को इनसे लड़ने के लिए बलूचिस्तान में उतारा. इस लड़ाई में 15000 बलूचियों की मौत हुई. इस लड़ाई के बाद इस संगठन के कई सदस्य अफ़ग़ानिस्तान चले गए. जहां उन्हें फिर से संगठित होने का मौक़ा मिला. आज भी यह संगठन सक्रिय है, लेकिन इसके सदस्य भूमिगत हो चुके हैं.

बलूच पीपल्स लिबरेशन फ्रंट

बलूच पीपल्स लिबरेशन फ्रंट यानी बलूच आवामी आज़ादी महाज़ की स्थापना 1973 में हुई. उस वक़्त इसे इराक़ और सोवियत यूनियन का समर्थन था. यह संगठन भी बलूचिस्तान की पूरी आज़ादी के मक़सद से पाकिस्तान सेना के ख़िलाफ़ लड़ रहा है. अफ़ग़ानिस्तान में जब सोवियत संघ की सेना थी तब इस संगठन के हज़ारों सदस्यों को ट्रेनिंग दी गई.

पॉपुलर फ्रंट फॉर आर्म्ड रेसिस्टेंट

पॉपुलर फ्रंट फॉर आर्म्ड रेसिस्टेंट की स्थापना 1960 में हुई. यह संगठन 1973 तक ही सक्रिय रहा.

बलूची लिबरेशन फ्रंट

बलूची लिबरेशन फ्रंट की स्थापना 1960 में हुई, जब बलूचिस्तान में विद्रोह चल रहा था. इससे पहले बलूचिस्तान के मिलिटेंट ग्रुप क़बाइलियों की तरह लड़ रहे थे, पर बलूची लिबरेशन फ्रंट ने विद्रोह का तरीक़ा और रणनीति बदल दी. इसका मुख्य कार्यालय दुबई में था. इसके नेता जुम्मा ख़ान मरी थे. इस संगठन के सदस्यों को इराक़ में ट्रेनिंग मिलती थी. 1975 में यह संगठन कई हिस्सों में टूट गया.

बलूची ऑटोनोमिस्ट मूवमेंट

इसका नाम ईरान के गुरिल्ला विद्रोह से जुड़ा है. इसके सदस्य बलूच समुदाय के लोग थे. यह संगठन बलूचिस्तान के ईरान वाले हिस्से में ही सक्रिय रहा. इसके नेता मौलवी अब्दुल अज़ीज़ मोल्लाज़ादे थे. इराक़ ईरान युद्ध की समाप्ति के बाद इन लोगों ने ईरान छोड़ कर दूसरे देशों में शरण ले ली. तब से यह ग्रुप निष्क्रिय है.

बलूच लिबरेशन यूनाइटेड फ्रंट

यह पाकिस्तान के अंदर सक्रिय एक मिलिटेंट ग्रुप है. बलूचिस्तान की राजधानी क्वेटा में यूएनएचसीर के अमेरिकी कर्मचारी जॉन स्लेकी के अपहरण के बाद यह संगठन सुर्ख़ियों में आया. बलूचिस्तान लिबरेशन यूनाइटेड फ्रंट ने इस अपहरण की ज़िम्मेदारी ली और पाकिस्तान की सरकार के सामने मांग रख दी कि बलूचिस्तान विद्रोह के दौरान गिरफ़्तार हुए बलूच नेताओं को छोड़ दिया जाए. लेकिन पाकिस्तान की सरकार ने उनकी मांगों को ठुकरा दिया, लेकिन बलूचिस्तान के राष्ट्रवादी नेताओं ने यह अपील की कि मेहमानों को निशाना बनाना बलूचिस्तान के लिए फ़ायदेमंद नहीं है. बलूचिस्तान लिबरेशन युनाइटेड फ्रंट ने कुछ दिन बाद जॉन स्लेकी को छोड़ दिया.

(नोट: इसके अलावा और भी कई हथियारबंद गुट हैं, जो बलूचिस्तान में सक्रिय हैं. जैसे, बलूच पीपल्स लिबरेशन फ्रंट, बलूच रिपब्लिकन आर्मी)

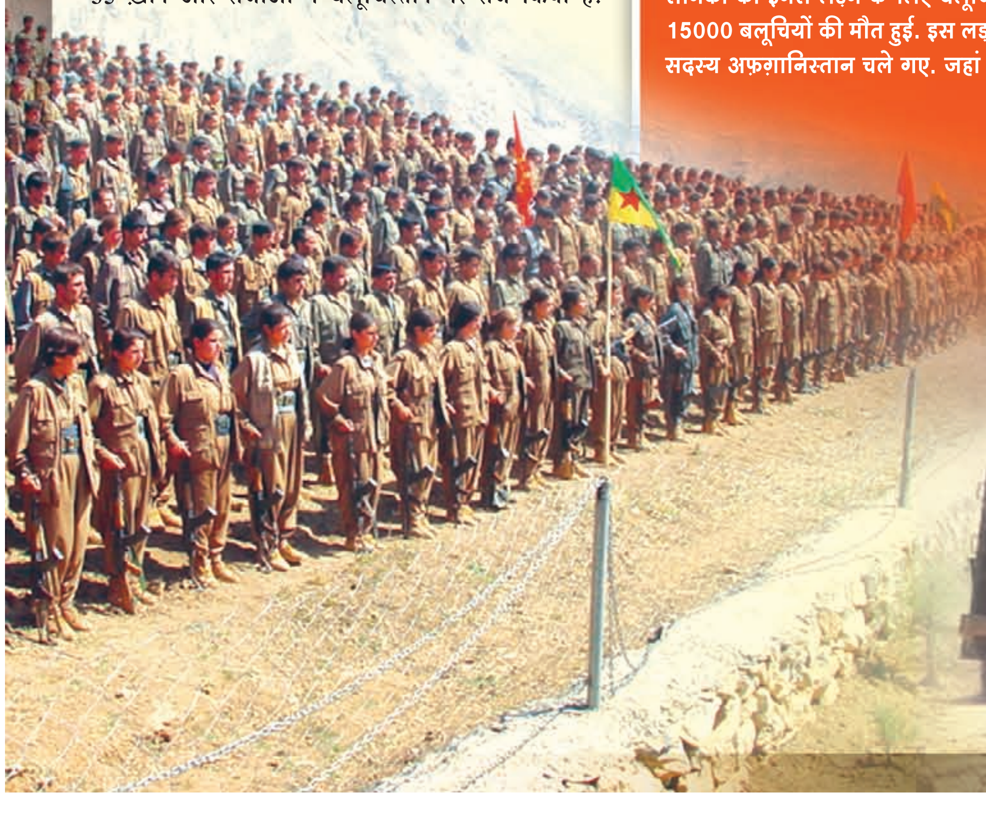

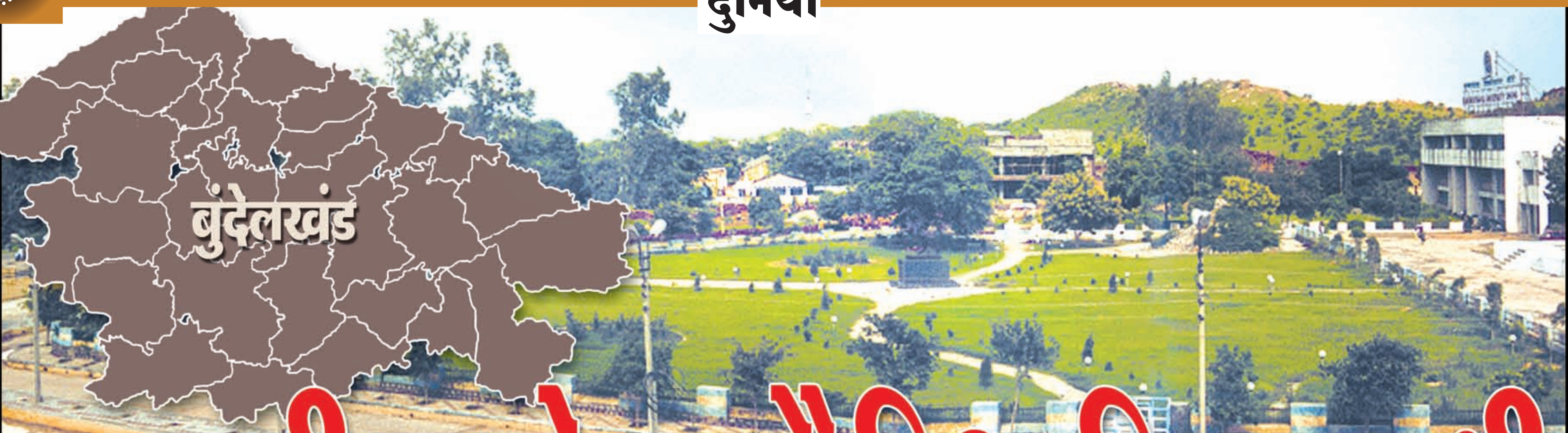

बदहाली पर रो रहा है विश्वविद्यालय भी

बुंदेलखंड विश्वविद्यालय में दस साल में नौ कुलपति बदले. क़रीब 75 कोर्स ख़त्म हुए और 250 से अधिक शिक्षक विश्वविद्यालय छोड़कर भाग गए. विकास के नाम पर पिछले तीन सालों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) की 50 करोड़ से अधिक ग्रांट आई, छह करोड़ रुपये के कंप्यूटर और एअर कंडीशनर ख़रीदे गए, कंप्यूटर के 15 जानकारों को शिक्षकों की नौकरी दी गई, दस हज़ार छात्र स्थानीय और दो हज़ार बाहरी छात्रों का प्रवेश लेना बंद हुआ. 30 हज़ार छात्रों का रिजल्ट बिगड़ा. इस वर्ष भी क़रीब बीस हज़ार छात्र रिजल्ट में देरी और प्रशासनिक व तकनीकी कमियां होने से विश्वविद्यालय से अपना नाता तोड़ने का इरादा किए बैठे हैं. विकास में सबसे अधिक लाभ यहां तैनात चौकीदार, कर्मचारियों और बाबुओं को मिला है जिन्होंने बार-बार अदलते बदलते कुलपतियों का फ़ायदा उठाकर अपने प्रमोशन कराने के साथ करोड़ों रुपये के वारे-न्यारे किए हैं. विश्वविद्यालय में काम करने वाले चौकीदार बाबू की भूमिका तो बाबू प्रोफेसर वाली रही है. विश्वविद्यालय में बार-बार बदलते पिछले सात कुलपतियों का लेखा-जोखा निकाला जाए तो विदेशी दौरे, निजी ख़र्च, सुख-साधन और दूरसंचार के ऊपर क़रीब 60 करोड़ रुपये ख़र्च किए गए हैं. इनमें वर्ष 2007 में तत्कालीन कुलपति वी.के. मित्तल के एक करोड़ रुपये फूंक कर विदेशी दौरा करना भी शामिल है. सूत्रों का दावा है कि पिछले आठ सालों में आठ कुलपतियों के बदलने के पीछे अय्याशी, लूट-खसोट, फ़र्ज़ी नियुक्तियां करना और पैसे लेकर उपाधियां बांटने जैसे संगीन आरोप रहे हैं.

जून 2005 में सबसे पहले प्रोफेसर रमेश चंद्रा ने अपने कार्यकाल के दो वर्ष पूरे किए. रमेश चंद्रा ने ही अपने चहेतों को उपाधियां बांटनी प्रारंभ कीं. उन पर राजनीतिक दखलंदाजी को बढ़ावा देने से लेकर बिना किसी मान्यता के कोर्सों को शुरू करना, बाहरी महिला शिक्षकों को अपने आवास पर ठहराना और लाखों रुपयों के विदेशी कॉल करने जैसे आरोप रहे हैं. वर्ष 2005 में रमेश चंद्रा के कुर्सी छोड़ते ही कुलपति आई.ए.एस. शंकर लाल अग्रवाल और उसके बाद आई.आई.टी. रुड़की से आर.पी. अग्रवाल आए. उन्होंने डेढ़ वर्ष में ही कुलपति का अपना पद इस्तीफ़ा देकर छोड़ दिया. इसके बाद आई.ए.एस. जगनमोहन को चार्ज मिला. उनको जातिवाद फैलाने के आरोप में हटाया गया. एक बार फिर शासन ने कठोर रवैया अपनाया. इसके बाद आई.आई.टी. से प्रोफेसर ए.के. सिंह को कुलपति बनाकर भेजा गया, पर बाबुओं और प्रोफेसरों की राजनीति के कारण श्री सिंह भी रातों रात इस्तीफ़ा देकर भाग निकले. उनके स्थान पर कार्यवाहक कुलपति के रूप में प्रति कुलपति ओ.पी. कंडारी को काम करने का मौक़ा दिया गया. उन्होंने भी कुर्सी का फ़ायदा उठाते हुए कई फ़र्ज़ी नियुक्तियां कीं और कई बाबुओं को प्रोफेसर बना दिया. इसका अच्छा-खासा विरोध भी उन्हें झेलना पड़ा. विरोध की सुगबुगाहट सुनते ही शासन ने वी.के. मित्तल, जो उस समय सरकार में प्रिंसिपल सेक्रेटरी थे, को तीन वर्ष के लिए कुलपति बनाकर विश्वविद्यालय भेजा गया, पर अपनी कथनी और करनी में उस्ताद रहे वी.के. मित्तल ने बुंदेलखंड विश्वविद्यालय में नई परंपरा की नींव डाली. इसके तहत वह न तो किसी पत्रकार से मिलते थे और न ही किसी नेता से मिलना ही पसंद करते थे. यह पैसा कमाने और धंधफंद करने का सबसे आसान तरीक़ा था. अब अपने फ़न में माहिर कुलपति वी.के मित्तल ने सबसे पहले सरकार के ऊपर जाल फेंककर कंप्यूटर तकनीकी शिक्षण संस्थान खोलने के नाम पर छह करोड़ रुपये के कंप्यूटर और एअर कंडीशनर ख़रीद डाले. इन कंप्यूटरों को चलाने के लिए 15 कर्मचारियों की शिक्षक के रूप में नियुक्ति कर डाली. इसमें ख़ास बात यह थी कि शिक्षक बनने वाला कोई भी कर्मचारी कंप्यूटर में ट्रेंड या कंप्यूटर में दिलचस्पी रखने वाला नहीं था. सूत्रों का दावा है कि तत्कालीन कुलपति वी.के. मित्तल के इस्तीफ़े के पीछे का असल कारण था-कॉलेज में तैनात एक शिक्षिका से प्रेम संबंध स्थापित करना. उन पर कंप्यूटर सप्लाई करने वाली कंपनी से एक करोड़ का कमीशन लेकर इंग्लैंड की सैर करने और बिना किसी मानकों के डिग्रियां व छात्रों को प्रवेश देने के भी आरोप रहे हैं. वर्तमान में कोई भी प्रोफेसर या आई.ए.एस. बुंदेलखंड विश्वविद्यालय का कुलपति बनना नहीं चाहता है. हालांकि सूत्र बताते हैं कि वर्ष 1999 में कार्यभार ग्रहण करने वाले योग्य प्रोफेसर रमेश चंद्रा अपना क़दम धीरे-धीरे राजभवन की ओर बढ़ा रहे हैं, ताकि उन्हें एक बार फिर विश्वविद्यालय को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चमकाने का मौक़ा मिल सके. प्रोफेसर रमेश चंद्रा के यहां आने से पूर्व भी कई नए विभागों, विषयों को मान्यता मिली थी और उनमें शिक्षकों, छात्रों की संख्या भी बढ़ी. लेकिन सवाल उठता है कि घिनौनी राजनीति के चलते क्या सरकार या विपक्ष में बैठे लोग बुंदेलखंड विश्वविद्यालय में उन्हें आने देंगे? हालांकि प्रोफेसर चंद्रा को झांसी लाने के लिए केंद्रीय ग्रामीण विकास राज्य मंत्री प्रदीप जैन ने भी राज्यपाल से अपील की है.

> **विकास के नाम पर पिछले तीन सालों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) की 50 करोड़ से अधिक ग्रांट आई, छह करोड़ रुपये के कंप्यूटर और एअर कंडीशनर ख़रीदे गए, कंप्यूटर के 15 जानकारों को शिक्षकों की नौकरी दी गई, दस हज़ार छात्र स्थानीय और दो हज़ार बाहरी छात्रों का प्रवेश लेना बंद हुआ.**

शमीम अहमद
feedback@chauthiduniya.com

सूखा देख सूखने लगे मंत्रियों के गले

बुंदेलखंड को लेकर केंद्र और प्रदेश की सियासी जंग तेज़ हो गई है. सरकार को प्रदेश के 47 जिलों के बाद अंत में झांसी को भी सूखाग्रस्त घोषित करना ही पड़ा. पिछले 12 वर्षों से पड़ रहे सूखे के कारण यहां की जलवायु के साथ-साथ नदियां, तालाब सिकुड़ कर आधे रह गए हैं. अधिकतर तालाबों और खेती की ज़मीन पर दबंगों ने क़ब्ज़ा कर कालोनियां और फार्म हाउसों का निर्माण कर रखा है.

वर्ष 2006-07 में पड़े भयंकर सूखे के कारण बुंदेलखंड का 30 फ़ीसदी किसान पलायन कर चुका है. उनके न रहने से कृषि उत्पादन में भी 40 फ़ीसदी कमी आई है. इस साल भी अगर सूखे की स्थिति बनी रही, तो शहरी क्षेत्र के बेरोज़गार और कमज़ोर वर्ग के लोग पलायन करने पर मजबूर हो जाएंगे. वैसे भी पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष जलस्तर 30 फीट नीचे खिसक गया है. नदी, तालाब, डैम और बांधों में भी सिर्फ़ तीन से चार माह तक के लिए प्रयोग करने लायक जल बचा है. अगर यही स्थिति भू-जल और जल स्रोतों की बनी रही तो यहां की अर्थव्यवस्था पर काफी बुरा असर पड़ेगा. बुंदेलखंड के गंभीर सूखाग्रस्त क्षेत्रों पर नज़र डालें तो एक जून से 15 जुलाई तक चित्रकूट में 47.5 फ़ीसदी, झांसी में 40.4, हमीरपुर में 65.4 और ललितपुर में 70.5 फ़ीसदी बारिश हुई है, जबकि जुलाई तक 350 मिलमीटर बारिश होना आवश्यक था. ख़रीफ़ की फ़सल पूरी तरह ख़त्म हो चुकी है. सूखे के इन गंभीर हालातों के सामने आने के बाद अब केंद्र और प्रदेश सरकारों के मंत्रियों के गले सूखने लगे हैं. हाल ही में बुंदेलखंड के दो मंत्रियों ने यहां के ज़मीनी हालात का मुआयना किए बग़ैर झांसी में सूखे की स्थिति को साफ नकार दिया था. दावा यहां तक कर दिया कि जिले के सभी नदी-तालाबों में भरपूर पानी है. उन्हें कहीं भी सूखा नज़र नहीं आ रहा था, जबकि यहां के हालात इन मंत्रियों के बयानों के विपरीत हैं. इसका सबूत प्रदेश सरकार ने झांसी को सूखाग्रस्त घोषित कर पेश भी कर दिया है. अब इन मंत्रियों के बयानों पर न तो अधिकारी ध्यान दे रहे हैं और न ही यहां की जनता. कांग्रेस ने प्रदेश सरकार के इन मंत्रियों को झूठा करार दिया है.

इस तरह की बयानबाज़ी के बीच फंसे बुंदेलखंड की हालत अब बद से बदतर होती जा रही है. जहां बुंदेलखंड से चुने गए केंद्रीय राज्य मंत्री प्रदीप जैन आदित्य के दावे सही हो रहे हैं, वहीं उनके दावों के ठीक विपरीत प्रदेश सरकार ने अपनी बयानबाज़ी ने यहां के विकास को ठप कर दिया है. अब पसोपेश में फंसे बुंदेलखंड के विकास के लिए जहां कांग्रेस ने अपना पासा फेंककर इसके समग्र विकास के लिए बुंदेलखंड विकास प्राधिकरण का गठन कर 8000 करोड़ रुपये का विशेष पैकेज देने की मांग की है, वहीं प्रदेश सरकार की कार्यशैली पर प्रश्नचिह्न लगाकर मायावती के कुशल प्रशासन को नाकारा और भ्रष्ट घोषित किया है. राजनीति के चंगुल में जकड़ चुके बुंदेलखंड की ख़रीफ़ की फ़सल तो प्रदेश और केंद्र सरकार चाट गई. बाकी अर्ध वर्षांत में होने वाली बुआई के लिए किसान सरकारी सहायता की उम्मीद में मुंह खोले बैठा है. सरकारों की खींचतान की बेशर्माई अब इन्हीं किसानों को ख़ुद मौत के मुंह में धकेल रहा है. देखना है कि कब केंद्र सरकार बुंदेलखंड विकास प्राधिकरण की स्थापना करती है और वहीं प्रदेश सरकार की हिलती ज़मीन को देख मायावती कौन सा पैंतरा फेंकती हैं. अपनी सरकार की साख बचाने के लिए यह एक गंभीर मामला है, जो देश के सबसे अधिक विकासशील क्षेत्र बुंदेलखंड को बेरोज़गारी और वीरानी की और धकेल रहा है. वर्ष 2006 में गठित सामरा समिति की रिपोर्ट की जहां केंद्र सरकार दोबारा समीक्षा कर रही है, वहीं 8000 करोड़ रुपये के पैकेज से बनने वाले बुंदेलखंड विकास प्राधिकरण की मांग का कब क्रियान्वयन होगा, इसका ज़िम्मा अब केंद्र सरकार के पाले में है.

मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के 22 जिलों को मिला कर बुंदेलखंड तैयार किया गया है. यहां की आबादी लगभग पांच करोड़ है. उपयोगिता के नाम पर इस क्षेत्र में खनिजों में हीरे की खान, लोहा, विश्व प्रसिद्ध सजर, तांबा, ग्रेनाइटस, लाइमस्टोन पर्याप्त मात्रा में हैं. झांसी में एक स्थान पर सोने की खान है, जिस पर दबंगों का काम चल रहा है. पर्यटन के हिसाब से खजुराहो, ओरछा, चित्रकूट, चंदेरी, झांसी, दतिया, कालिंजर, पन्ना, महोबा, सागर, गुना, ललितपुर और देवगढ़ प्रमुख स्थल हैं. यहां वन संपदा में हज़ारों एकड़ भूमि पर घने वन हैं. यहां कई दुर्लभ जड़ी बूटियों का भंडार है. भौगोलिक सर्वेक्षण में बुंदेलखंड की 40 प्रतिशत भूमि कृषि योग्य है. यहां ख़रीफ़ और रबी की फ़सलों के साथ मूंगफली, अदरक, हल्दी, महुआ, मटर, नींबू, बेर आदि की खेती बड़े पैमाने पर होती है. ज़रूरत है तो सिर्फ़ सिंचाई की उचित व्यवस्था की. बिजली के लिए यहां पारीछा, राजघाट, माताटीला है. अगर इस क्षेत्र की पैदावार और पैदा होने वाली बिजली इसी क्षेत्र के लिए सीमित कर दी जाए तो यहां की काफी बेरोज़गारी दूर हो जाएगी. लेकिन इसका सारा विकास आज बुंदेलखंड राज्य की मांग और यहां के आर्थिक पिछड़ेपन के विकास की मांग चट कर गया.

केंद्र और प्रदेश सरकारों की खींचतान बुंदेलखंड की ख़रीफ़ की फ़सल तो चट कर गई और अब इन बेघर किसानों, बेरोज़गारों और दलितों की छाती पर मूंग दलने जा रही है जो अभी 2002-03 सूखे की काली छाया से उभर भी नहीं पाए थे. यहां के प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले 35 से 40 फ़ीसदी छात्र उन वर्गों के हैं जो रोज़ कुआं खोदकर रोज़ पानी पीते हैं. अब इन परिवारों पर पड़ी सूखे की मार उनका शिक्षा का अधिकार तो छीन ही रही है, साथ ही उन्हें बेरोज़गार और बेघर कराने पर भी उतारू है. लेकिन केंद्र और राज्य सरकारों की बेशर्माई किसी भी मुद्दे पर इस क्षेत्र के विकास के तुरंत राहत के बारे में नहीं सोच रही है.

शमीम अहमद
feedback@chauthiduniya.com

माया और राहुल की तू-तू मैं-मैं

रूबी अरुण

सियासत है ही ऐसी बला, जो कहीं चैन नहीं लेने देती. दिल्ली की गर्मी से परेशान राहुल गांधी छुट्टियां मनाने लेह गए, पर वहां भी वह अपने दोस्तों के साथ बुंदेलखंड का ज़िक्र करने में ही मशगूल रहे. लेह की बर्फ़ीली वादियों में भी बुंदेलखंड के मसले पर गर्म हुई राजनीति उबलती रही. सुकून के उन पलों में भी राहुल के दिमाग़ पर उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती ही हावी रहीं. हालांकि राहुल के साथ उनका जाना-पहचाना अमला मौजूद नहीं था, पर उनके साथ थे एक बेहद क़रीबी दोस्त–राजीव. कुल्लू के भुंतल एयरपोर्ट से मनाली और फिर राजीव के निजी कार से लाहौल होते हुए लेह तक के सफ़र में राहुल लगातार सलाहकारों को फोन से निर्देश देते रहे कि उत्तर प्रदेश और बुंदेलखंड के मसले पर अब क्या क़दम उठाए जाने चाहिए. उधर, लखनऊ में मायावती भी इसी बात पर बल खा रही हैं. वह आरोप लगा रही हैं कि केंद्र सरकार बुंदेलखंड के लोगों को मोहरा बना कर राजनीति कर रही है. मायावती का कहना है कि बुंदेलखंड के लिए किसी प्राधिकरण की नहीं, बल्कि आर्थिक सहायता की ज़रूरत है. प्रस्तावित प्राधिकरण के ज़रिए कांग्रेस प्रदेश में अपरोक्ष रूप से केंद्रीय शासन थोप रही है.

बुंदेलखंड के मसले पर माया और राहुल के बीच सीधी रार ठन चुकी है. दोनों में ख़ुद को बुंदेलखंड की जनता का शुभेच्छु साबित करने की होड़ लगी है... दोनों के बीच मची *तू-तू मैं-मैं* ने दलगत वैमनस्यता भी मिटा दी है. संसद में जब बुंदेलखंड का मसला उठा तो केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ बसपा, भाजपा और मुलायम सिंह की पार्टी सपा ने एक सुर में बोलना शुरू कर दिया.

मतलब यह कि बुंदेलखंड के मसले पर माया और राहुल के बीच सीधी रार ठन चुकी है. तलवारें खिंच चुकी हैं और दोनों ही नेता एक–दूसरे को शिकस्त देने के लिए हर पैंतरे की आज़माइश कर रहे हैं. दोनों में ख़ुद को बुंदेलखंड की जनता का शुभेच्छु साबित करने की होड़ लगी है. उनके बीच मची दंगल में अब मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान भी कूद पड़े हैं. केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ उन्होंने मायावती से हाथ मिला लिया है. चौहान भी बुंदेलखंड के सिलसिले में चल रही केंद्र सरकार की कोशिशों को संघीय ढांचे के ख़िलाफ़ बता रहे हैं. चूंकि बुंदेलखंड में उत्तर प्रदेश के सात और मध्य प्रदेश के पांच जिले आते हैं, लिहाज़ा दोनों ही नेताओं का निहितार्थ इससे जुड़ा है. बुंदेलखंड पर मची इस *तू–तू मैं–मैं* ने दलगत वैमनस्यता भी मिटा दी है. संसद में जब बुंदेलखंड का मसला उठा तो केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ बसपा, भाजपा और मुलायम सिंह की सपा ने एक सुर में बोलना शुरू कर दिया. एक–दूसरे की धुर विरोधी इन पार्टियों की यह अनोखी एकजुटता कहने को तो केंद्र–राज्य संबंधों पर पड़ते दुष्प्रभावों को लेकर थी, लेकिन सच्चाई यह है कि ये पार्टियां उत्तर प्रदेश में राहुल गांधी के मज़बूत होते क़दमों को रोकना चाहती हैं. पर अहम सवाल है कि क्या इस राजनीतिक खींच–तान में उपेक्षित पड़े बुंदेलखंड के दिन बहुर सकेंगे? बुंदेलखंड का लगभग पूरा इलाक़ा ही विषम परिस्थितियों वाला है. पिछले छह सालों से बुंदेलखंड सूखे और तंगहाली की भीषण मार झेल रहा है. न तो मायावती और न ही पिछली यूपीए सरकार को इस इलाक़े की कोई सुध आई. अलबत्ता कांग्रेस महासचिव राहुल गांधी ने ज़रूर दरियादिली दिखाते हुए इस इलाक़े के सूखाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया. इससे भूखे–प्यासे किसानों के मन में एक आस जगी, पर उसका फौरी तौर पर कोई नतीजा नहीं निकला. अब, जबकि उत्तर प्रदेश पर क़ब्ज़ा करने की मंशा पर राहुल ने अमल करना शुरू किया तो उन्हें बुंदेलखंड की भरपूर याद आई. अब भला मायावती को यह बर्दाश्त कैसे हो? लिहाज़ा वह भी लगे हाथ हिमायती बनने की ज़ोर–आज़माइश में लग गई हैं. यूं तो पहले भी राहुल और माया ने एक–दूसरे पर जुबानी हमला करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, पर इस मुद्दे पर तो दोनों बिल्कुल आमने–सामने खड़े हैं. उनका *तू–तू, मैं–मैं* शबाब पर है. राहुल गांधी ने 27 जुलाई को प्रधानमंत्री को ज्ञापन देकर बुंदेलखंड के लिए केंद्रीय प्राधिकरण बनाने की मांग की तो लगे हाथों मायावती ने इस पर अपनी नाराज़गी दर्ज़ कराते हुए प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिख कर चेतावनी दे डाली कि केंद्रीय प्राधिकरण के गठन से केंद्र और राज्य के संबंधों और संवैधानिक प्रावधानों की बुनियाद पर असर पड़ेगा. राहुल चाहते हैं कि प्राधिकार के गठन के साथ–साथ बुंदेलखंड के हर जिले में केंद्रीय विद्यालय, सैनिक स्कूल और मेगा पावर प्रोजेक्ट लगाया जाएं. पर मायावती ऐसा नहीं चाहतीं, क्योंकि वह जानती हैं कि अगर केंद्र की कांग्रेस सरकार ने राहुल की मांग पर अमल कर लिया तो वह बुंदेलखंड में अपना जनाधार बनाने का मौक़ा हमेशा के लिए चूक जाएंगी. वहीं कांग्रेस हर हाल में इस इलाक़े के लोगों पर अपनी छाप छोड़ना चाहती है. राहुल गांधी की नज़र 2012 के विधानसभा चुनाव पर है. लिहाज़ा बुंदेलखंड के साथ–साथ राहुल की नज़र पूर्वांचल पर भी है, जो समूचे उत्तर प्रदेश का आधा हिस्सा है.

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

बुंदेलखंड की बदहाली दिल दहला देने वाली है. इस इलाक़े के 13 जिलों में से लगभग आधी आबादी पलायन कर चुकी है. किसानों की बदहाली, पिछड़ापन, सूखा इन सबने बुंदेलखंड की तस्वीर भयावह बना दी है. चित्रकूट, महोबा, छतरपुर, टीकमगढ़, बांदा, हमीरपुर और सागरपुर जिलों से सबसे ज़्यादा पलायन हुआ है. पलायन के जो आंकड़े मौज़ूद हैं, वे हैरान कर देने वाले हैं. महोबा की कुल आबादी 7 लाख 8 हज़ार है, जिनमें से 2 लाख 97 हज़ार लोग अपना शहर छोड़ चुके हैं. छतरपुर की आबादी 14 लाख 74 हज़ार 633 है, जिनमें से 7 लाख 66 हज़ार 809 लोग पलायन कर चुके हैं. यानी कि कुल पचास फ़ीसदी आबादी अपना घर–बार छोड़ कर जा चुकी है. चित्रकूट की 7.5 लाख की आबादी में से 3.5 लाख लोग पलायन कर चुके हैं. टीकमगढ़ की 12 लाख की आबादी में से लगभग 6 लाख लोग अपना घर छोड़ चुके हैं. बांदा की 15 लाख की आबादी में से 7.5 लाख लोग पलायन कर चुके हैं. दतिया में 32 फ़ीसदी, दमोह में 25 फ़ीसदी, पन्ना में 30 फ़ीसदी, सागर में 20 लाख की आबादी में से 8 लाख, ललितपुर में 9 लाख 77 हज़ार में से 3 लाख 81 हज़ार की आबादी, और झांसी की 17 लाख 44 हज़ार में से 5 लाख 58 हज़ार लोग पलायन कर चुके हैं. दो हज़ार से ज़्यादा किसानों ने आत्महत्या कर ली है. एक हज़ार से ज़्यादा बुनकरों के लिए रोज़ी–रोटी का संकट खड़ा हो गया है. उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती को पिछले दो सालों से यह पलायन नज़र नहीं आ रहा था. न ही किसानों की आत्महत्या की ख़बरें उन्हें विचलित कर रही थीं. पर जैसे ही राहुल ने इस मुद्दे पर अपनी सक्रियता दिखाई, मायावती बेचैन हो उठीं. उनकी समझ में यह बात आ गई कि अगर राहुल गांधी की कोशिशों से बुंदेलखंड प्राधिकरण बन गया तो मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के 13 जिलों के विकास कार्यों में केंद्र का सीधा दखल हो जाएगा, जिसका लाभ कांग्रेस को ही मिलेगा. अब शिवराज सिंह चौहान हों या मायावती, उनके गले भला यह कैसे उतरेगा? सो विरोध और टकराव की राजनीति जारी है.

feedback@chauthiduniya.com

भूख–प्यास पर भी राजनीति

दिल्ली के हज़रत निज़ामुद्दीन स्टेशन पर फटेहाल कुली हरि सिंह जालौन की जर्जर काया को देखकर यह यक़ीन करना मुश्किल है कि वह कभी बड़े संपन्न हुआ करते थे. टीकमगढ़ के हरि सिंह जालौन की गिनती कभी इलाक़े के बेहद समृद्ध किसानों में होती थी, पर बुंदेलखंड में पड़े सूखे ने उन्हें दर–बदर कर दिया. आज वह और उनका परिवार दाने–दाने को मोहताज़ है. उनके साथ ही हैं जगेश्वर सिंह. जगेश्वर पन्ना के रहने वाले हैं. अपने पूरे परिवार के साथ जगेश्वर सराय काले खां बस स्टैंड पर चाय की रेहड़ी लगा किसी तरह ख़र्च निकाल रहे हैं. पन्ना के उनके विशाल मकान में ताला लगा है. खेतों में दरार पड़ चुकी है और सारे पालतू पशु भूख और प्यास से काल–कवलित हो चुके हैं. पिछले छह सालों से सूखे की मार झेल रहे बुंदेलखंड के लगभग छह लाख किसानों की यही नियति है. रोटी और पानी की तलाश में रोज़ाना यहां के किसान ट्रकों में जानवरों की तरह भरकर पंजाब, दिल्ली, मुंबई और हरियाणा की ओर भाग रहे हैं. आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाला बुंदेलखंड आज ज़िंदगी की लड़ाई लड़ रहा है. पानी को लेकर यहां हाहाकार मचा है. पानी की रखवाली इस इलाक़े में ख़ज़ाने की तरह बंदूक के साए में की जाती है. छतरपुर, दमोह, सागर, टीकमगढ, पन्ना के तक़रीबन सारे जलाशय और बांध सूख चुके हैं. कई–कई किलोमीटर तक पानी की बूंद तक नहीं मिलती. घरों में लगे नलों में हफ्ते के सात दिनों में बमुश्किल एक वक़्त भी पानी आ जाए तो वह लोगों के लिए नियामत बन जाता है. नगर पालिका के टैंकर जहां पहुंचते हैं वहां मार–काट मच जाती है. नगर सेना के हथियारबंद जवानों की देखरेख भी काम नहीं आती. हालात अफ़्रीका के इथियोपिया और सोमालिया जैसे हो चुके हैं. गनीमत है कि अभी चित्रकूट की मंदाकिनी नदी का पानी कुछ बचा हुआ है. अगर इस साल भी बारिश नहीं हुई और यह नदी सूख गई तो हालात बेक़ाबू हो जाएंगे. पर इस आपदा पर काम के बजाय अभी भी राजनीति ही हो रही है. भूमि का जल स्तर लगातार गिरता जा रहा है, पर जल संरक्षण के परंपरागत तरीक़ों की पूरी तरह अनदेखी की जा रही है. जबकि यहां ज़रूरत इस बात की है कि तुरंत इस पर अमल हो. जल संकट के इस दौर में भी सबक़ सीखने के बजाय कुछ समृद्ध किसान ऐसे हैं जो मेथा की खेती कर रहे हैं. बिना यह सोचे कि एक किलो ग्राम मेथा आयल के उत्पादन में सवा लाख लीटर पानी का इस्तेमाल होता है. सरकार यह जानती है, फिर भी इसकी खेती को बढ़ावा दिया जाना आत्मघाती क़दम है. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के कृषि वैज्ञानिकों का कहना है कि पहले बुंदेलखंड के हर गांव की परिधि में कम से कम पांच तालाब होते थे, जो अब ग़ायब हो चुके हैं. हर गांव में पांच कुएं भी होते थे. अब उनका भी अता–पता नहीं है. ज़ाहिर है, कुओं और तालाबों की श्रृंखला ख़त्म होने से भी यह जल और कृषि संकट पैदा हुआ है. साथ ही यहां होने वाली खेती के तेवर को भी बदलने की ज़रूरत है. ज़्यादा पानी, खाद और उन्नत बीजों के इस्तेमाल करने वाली फ़सलों की जगह मोटे अनाजों, दलहनों और जैविक खेती के तरीक़ों को प्रचलित करने की निहायत आवश्यकता है. ज़ाहिर है, ये सारे काम दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति से ही होंगे, न कि एक–दूसरे पर आरोप मढ़ने और छिछली राजनीति करने से.

राहुल का मास्टर स्ट्रोक–मिशन बुंदेलखंड

राहुल की यह दूरगामी रणनीति है. भारतीय राजनीति में राहुल का यह मास्टर स्ट्रोक है. राहुल की यह एक ऐसी कोशिश है जिसमें अगर वह सफल हो गए तो भारत के सामाजिक–राजनीतिक परिवेश में वह एक पुरोधा के रूप में अंकित हो जाएंगे. बुंदेलखंड जैसे पिछड़े और अकालग्रस्त इलाक़े में की गई छोटी–सी भी सकारात्मक कोशिश बग़ैर कहे साफ तौर पर नज़र आएगी.

लिहाज़ा ख़ुद को आम–आवाम का हिमायती साबित करने के लिए बुंदेलखंड से बेहतर प्लेटफार्म राहुल को मिल ही नहीं सकता. मायावती से तो वैसे भी पुरानी राजनीतिक अदावत है. जैसे मायावती मौक़ा मिलते ही राहुल पर ज़ुबानी हमले के ज़रिए टूट पड़ती हैं, वैसे ही मायावती पर प्रहार करने का कोई भी मौक़ा राहुल नहीं चूकते. बुंदेलखंड के मसले पर मायावती को साफ दरकिनार करते हुए राहुल कहते हैं कि उन्हें इस बात से कोई लेना–देना नहीं कि मायावती क्या प्रलाप कर रही हैं या फिर मुलायम सिंह यादव ने बुंदेलखंड के मसले पर क्या किया. उन्हें तो बस बुंदेलखंड के विकास की चिंता है. उनका मिशन, बुंदेलखंड में तरक़्क़ी की राह खोलना है और वह यह सुनिश्चित करेंगे. राहुल के इस बयान के अलग निहितार्थ हैं. यह कोई सीधा–सपाट बयान मात्र नहीं है.

यह जवाब है 2008 में हुए मध्य प्रदेश विधानसभा चुनाव में वहां के मतदाताओं से किए गए मायावती के उन सियासी वादों का, जिनमें मायावती ने कहा था कि जब वह देश की प्रधानमंत्री बनेंगी तो बुंदेलखंड को अलग राज्य का दर्ज़ा मिलेगा. मायावती ने 26 मई 2007 को प्रधानमंत्री से मिलकर बुंदेलखंड के लिए आर्थिक पैकेज की मांग की थी. मायावती की वह मांग अभी तक केंद्र सरकार के ठंडे बस्ते में है. अब राहुल की मांग के अनुरूप बुंदेलखंड प्राधिकरण के गठन की कोशिश की जा रही है. जानकार इसे बुंदेलखंड को अलग राज्य बनाने की कांग्रेस की कोशिश के रूप में भी देख रहे हैं. वैसे भी बुंदेलखंड को अलग राज्य बनाने की मांग बहुत दिनों से उठ रही है. मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान कहते हैं कि बुंदेलखंड पर केंद्र सरकार का क़दम लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं है.

केंद्र सरकार को बुंदलेखंड की अगर इतनी ही चिंता थी तो पिछले तीन सालों से पड़ रहे सूखे के लिए विशेष पैकेज क्यों नहीं दिया? जबकि इस ओर प्रधानमंत्री और कृषि मंत्री दोनों का ही ध्यान बार–बार आकृष्ट किया गया था. जबकि मध्य प्रदेश सरकार ने अपने ख़ज़ाने से 500 करोड़ की राहत बांटी. शिवराज सिंह चौहान राहुल गांधी पर भी कटाक्ष करते हैं कि अगर उन्हें बुंदेलखंड से इतना ही प्यार है तो वह पैसे क्यों नहीं देते? बिना पैसे दिए यह कैसा प्यार है? पर राहुल अपनी धुन में गाफ़िल हैं.

उन्हें इस बात की परवाह नहीं कि उनके विरोधी क्या इल्ज़ाम लगा रहे हैं. उनका नज़रिया साफ है और मक़सद स्पष्ट. उन्हें पता है कि एक महज़ बुंदेलखंड की भूख–प्यास मिटा कर वह रोल माडल बन सकते हैं. विकास तो होगा ही, जनता से उन्हें इनाम भी भरपूर मिलेगा.

नीतीश को भी कहना पड़ा जार्ज की जय

सुरेंद्र किशोर

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

जार्ज फर्नांडीस के राज्यसभा का सदस्य बन जाने पर अधिकतर लोग ख़ुश हैं. जार्ज भी ख़ुश हैं. प्रसन्न जार्ज ने 31 जुलाई को पटना छोड़ते समय सबको *थैंक यू* कहा. वैसे जनता दल-यू के ऐसे कुछ नेता अवश्य उदास हैं, जिनकी ख़ुद की या फिर जिनके समर्थकों-मित्रों की नज़रें इस सीट पर थीं. ख़ुद जार्ज फर्नांडीस अपना नामांकन पत्र दाख़िल करने के बाद काफी ख़ुश नज़र आए. विरोध में कोई उम्मीदवार था ही नहीं. शरद यादव के इस्तीफ़े से यह सीट खाली हुई थी. दूसरी ओर मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का भी ख़ुश होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि उन्होंने इसके ज़रिए अपने राजनीतिक विरोधियों से भी सराहना पाई. साथ ही इस एक सीट के लिए जद-यू में जारी उच्चस्तरीय खींचतान की समस्या से भी नीतीश कुमार को मुक्ति मिल गई. अब भला अस्वस्थ जार्ज के नाम पर कौन विवाद खड़ा करता!

पर एक अनपेक्षित राजनीतिक घटनाक्रम के तहत जार्ज फर्नांडीस को मिली इस सीट के कारण ख़ुद जार्ज की राजनीतिक छवि को थोड़ा नुक़सान पहुंचा है. यदि जार्ज पूरी तरह स्वस्थ रहते तो इस मुद्दे पर उनकी काफी आलोचना होती. पर दबे स्वर से यह सवाल तो उठ ही रहा है कि वह मात्र चार महीने पहले की अपनी ही एक बात से आख़िर क्यों पलट गए? गत लोकसभा चुनाव के समय जार्ज ने कहा था कि राज्यसभा में समाजवादी नहीं जाते. इसीलिए मैं भी नहीं जाऊंगा. जद-यू ने मुज़फ्फरपुर लोकसभा चुनाव क्षेत्र में उम्मीदवार बनाने की जगह उन्हें राज्यसभा में भेजने का वादा किया था. पर इसी जनता दल(यू) के टिकट पर वह राज्यसभा में जाने के लिए बाद में क्यों राजी हो गए? सुविधाभोगी नेताओं के लिए अपनी बातों से पलट जाना आज कोई नई बात नहीं है, पर यह काम जार्ज ने भी इस बार कर दिया तो उनके बचे-खुचे प्रशंसकों को यह अच्छा नहीं लगा. हालांकि ऐसा काम वह 1979 में भी कर चुके थे. उन्होंने पहले तो तब की मोरारजी देसाई सरकार के बचाव में संसद में शानदार भाषण दिया. पर सरकार गिर जाने के बाद वह चरण सिंह के खेमे में चले गए. शायद तब तो वैसा उन्होंने अपने राजनीतिक गुरु मधु लिमये की सलाह पर किया था. लेकिन इस बार?

जार्ज फर्नांडीस ने अपने लंबे राजनीतिक जीवन में अनेक बहादुराना काम किए हैं. इनसे देश भर में फैले उनके प्रशंसकों के मानस में उनकी जो छवि बनी थी, उसे उन्होंने अपने ही हाथों इस बार तार-तार कर दिया.अब आगे से किसी *डायनामाइटी नेता* पर भी जनता कैसे भरोसा करेगी? जार्ज का तिब्बती पद्धति से दलाई लामा की देखरेख में इन दिनों इलाज चल रहा है. हाल में यह भी ख़बर आई थी उनके स्वास्थ्य में थोड़े सुधार के लक्षण भी प्रकट होने लगे हैं. ईश्वर करे, वह पूर्ण स्वस्थ हो जाएं. फिर तो वह अपनी कड़ी आलोचना सुनने के लिए तैयार रहें.

पर अभी तो जार्ज ने गत चार महीने के भीतर दो गंभीर गलतियां कीं. गत लोकसभा चुनाव में जद-यू से टिकट नहीं मिलने पर आतुर होकर उन्होंने मुज़फ्फरपुर से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़कर पहली ग़लती की. वहां उनकी ज़मानत ज़ब्त हो गई. पता चला कि उनके चुनाव ख़र्च के पैसे भी चुरा लिए गए. उनसे दूसरी ग़लती यह हुई कि उन्होंने बाद में राज्यसभा में जाने का नीतीश कुमार का ऑफर स्वीकार कर लिया.

जनता दल-यू जब लोकसभा चुनाव से पहले उन्हें राज्यसभा में जगह देने का ऑफर कर रहा था तो जार्ज ने कहा था कि समाजवादी राज्य सभा में नहीं, बल्कि लोकसभा में जाते हैं. हालांकि उनकी यह बात ग़लत थी. कभी डॉ. राम मनोहर लोहिया ने ज़रूर कहा था कि हाल में ही जो नेता आम चुनाव हार कर आया है, उसे उच्च सदन में नहीं जाना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोगों को मौक़ा मिल सके. मधु लिमये चूंकि लोकसभा का चुनाव लड़ा करते थे, इसलिए लोकसभा चुनाव में अपनी पराजय के बाद उन्होंने राज्यसभा में जाने से मना कर दिया था. यही रुख़ बिहार के पूर्व मंत्री कपिल देव सिंह का था. वह भी मौक़ा और ऑफर रहने के बावजूद कभी विधान परिषद में नहीं गए. पर बिहार में लोहियावादी समाजवादी पार्टी के संस्थापक नेताओं में से एक भूपेंद्र नारायण मंडल तो साठ के दशक में ही राज्यसभा में चले गए थे. राज नारायण भी राज्यसभा में थे. यह सब डॉ. राम मनोहर लोहिया के जीवन काल में ही हुआ था.

जार्ज ने इस मामले में जिस तरह पलटी मारी, उससे नेताओं की विश्वसनीयता पर एक बार फिर आंच आई. बड़े नेताओं से जुड़े ऐसे ही प्रकरणों से अंतत: लोकतंत्र का नुक़सान हो जाता है.

आपातकाल में इसी लोकतंत्र की वापसी के लिए अपनी जान हथेली पर लेकर इंदिरा शासन के ख़िलाफ़ कठिन संघर्ष करने वाले जार्ज से ऐसी उम्मीद नहीं थी. याद रहे कि यदि इस देश से आपातकाल नहीं हटा होता तो बड़ौदा डायनामाइट केस में जार्ज को फांसी की सज़ा हो गई होती. तब उनका दर्जा संभवत: भगत सिंह का होता. पर आज? आज तो राज्यसभा की एक सीट के लिए दिल्ली से पटना दौड़े आए जार्ज में यह ढूंढ़ पाना कठिन लगा कि उसमें *डायनामाइटी फर्नांडीस* आख़िर कहां है? इसे ही कहते हैं इतिहास की स्लेट पर लिखी गई अपनी ही गौरव गाथा को किसी नेता द्वारा अपने ही हाथों से मिटा देना.

ख़ैर, जार्ज यदि चाहते ही थे कि उन्हें राज्यसभा में जाना चाहिए, तो उन्हें भेजा ही जाना चाहिए था. उनका इस देश के राजनीतिक आंदोलन व मज़दूर आंदोलन में जो योगदान रहा है, वह बेमिसाल माना जाता है. इस योगदान के सामने राज्यसभा की एक सीट कुछ भी नहीं है. आजकल तो ऐसे-ऐसे लोग भी राज्यसभा में जा रहे हैं जिनकी वहां उपस्थिति से सदन की गरिमा नहीं बढ़ रही है. नीतीश कुमार ने तो आगे बढ़कर यह भी कहा है कि जार्ज साहब जब तक चाहेंगे और हमारी क्षमता रहेगी, तब तक हम उन्हें राज्यसभा में भेजते रहेंगे.

जार्ज फर्नांडीस ने पहली बार 1967 में मुंबई के एक लोकसभा चुनाव क्षेत्र में तब के दिग्गज कांग्रेसी नेता एस.के.पाटिल को पराजित किया था. तब जार्ज जाइंट कीलर कहलाए थे. 1971 में तो वह इसी क्षेत्र में हार गए, पर 1977 में उन्होंने मुज़फ्फरपुर संसदीय क्षेत्र में क़रीब सवा तीन लाख मतों से विजय हासिल की. आपातकाल में जार्ज ने जो बहादुरी से संघर्ष किया था, उसके कारण वह हीरो बन गए थे. 1980 में भी वह मुज़फ्फरपुर से ही जीते.

पर 1984 में वह कर्नाटक के एक लोकसभा चुनाव क्षेत्र में हार गए. जार्ज ने बिहार के बांका में भी दो बार लोकसभा का उप चुनाव लड़ा, पर वह विफल रहे. 1989 से 2009 तक वह मुज़फ्फरपुर व नालंदा से सांसद रहे. 1977 और 2004 के बीच वह केंद्र में तो एकाधिक बार मंत्री बने, पर नीतीश कुमार से मतभेद के कारण उन्हें 2009 में जद-यू ने टिकट नहीं दिया. अच्छा ही हुआ कि इस बार जद-यू ने अपनी पिछली ग़लती सुधार ली. याद रहे कि बिहार में अधिक लोगों की यही राय थी कि जार्ज का लोकसभा का टिकट नहीं कटना चाहिए था. पर यदि उन्हें टिकट नहीं ही मिला तो जार्ज को गत चुनाव में मुज़फ्फरपुर से लड़ना भी नहीं चाहिए था.

feedback@chauthiduniya.com

बिहार कांग्रेस में घमासान

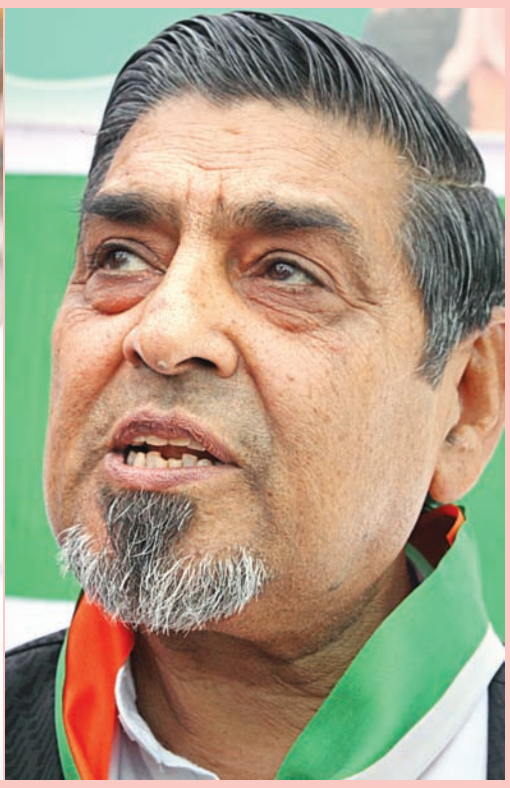

बिहार कांग्रेस में कोहराम मचा है. लड़ाई प्रदेश अध्यक्ष पद की है. प्रदेश कांग्रेस के पुराने नेता रामजतन सिंह, महाचंद्र सिंह और मौजूदा प्रदेश अध्यक्ष अनिल सिंह के बीच घमासान छिड़ चुका है. तीनों एक-दूसरे की छीछालेदर में लगे हैं और उनके समर्थक ज़बरदस्त गुटबंदी में लगे हैं. नौ अगस्त को बिहार में कांग्रेस मुख्यालय सदाकत आश्रम में कांग्रेस नेताओं की बैठक होने वाली है. बिहार मामलों के प्रभारी पूर्व केंद्रीय मंत्री जगदीश टाइटलर इसमें शिरकत करने वाले हैं. बिहार मामलों का प्रभारी बनने के बाद यह उनका पहला दौरा है. ज़ाहिर है, उनकी पहली यात्रा ही पार्टी नेताओं के बीच कलह का शिकार बनने वाली है. मुश्किल यह भी है कि प्रदेश अध्यक्ष पद के लिए सिर फुटव्वल करने वाले तीनों ही नेता एक ही जाति के हैं. प्रदेश के एक बुज़ुर्ग कांग्रेसी नेता संशय जताते हुए कहते हैं कि पद और रुतबे के फेर में टाइटलर के सामने ही कहीं जूतम-पैज़ार की नौबत न आ जाए. राहुल गांधी ने टाइटलर को निर्देश दिया है कि वह पार्टी नेताओं के साथ मिल-बैठ कर राज्य की 17 सीटों पर होने वाले उपचुनावों की रणनीति तय करें. पार्टी कार्यकर्ताओं का मनोबल बढ़ाएं और प्रदेश संगठन को मज़बूत करने की पुरज़ोर कोशिश करें. पर जो हालात हैं उनमें जगदीश टाइटलर ऐसा कुछ कर भी पाएंगे, इसमें भरपूर संशय है. प्रदेश के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में भी टाइटलर के दौरे को लेकर कोई उत्साह देखने को नहीं मिल रहा. 84 दंगों का भूत वहां भी टाइटलर का पीछा नहीं छोड़ रहा. पटना तो वैसे भी सिखों के धर्मगुरु गुरु गोविंद सिंह की जन्मस्थली है और वहां के सिखों के दिलों में भी 84 के दंगों के घाव अभी तक हरे हैं. लिहाज़ा, जगदीश टाइटलर के लिए बिहार का प्रभारी बनना कांटों के ताज़ जैसा ही है. उनके क़रीबी बताते हैं कि जगदीश टाइटलर भी अपनी स्थिति से वाक़िफ़ हैं. इसलिए वह भी बिहार में अपनी भूमिका को लेकर ज़्यादा उत्साहित नहीं दिख रहे. ऊपर से प्रदेश में पहले से ही मरी पड़ी कांग्रेस टुकड़े-टुकड़े में बंटी हुई दिख रही है. सत्ता की इस बिसात पर गोपालगंज के पूर्व सांसद और अब कांग्रेस नेता साधु यादव और पूर्व केंद्रीय मंत्री शकील अहमद भी हैं. पार्टी का एक धड़ा यह चाहता है कि कोई पिछड़ा या अल्पसंख्यक नेता ही प्रदेश अध्यक्ष की बागडोर संभाले. हालांकि साधु यादव मोतिहारी से लोकसभा का चुनाव हार चुके हैं और प्रदेश संगठन में भी उनकी कोई अहम हिस्सेदारी तय नहीं की गई है. पर लोकसभा चुनाव में कांग्रेस ने उनके कंधों पर महती ज़िम्मेदारियां सौंपी थी और युवा तुर्क के तौर पर साधु में अपना भरोसा भी जताया था. पर इन दिनों साधु किनारे नज़र आ रहे हैं. उनके समर्थकों के अपने दावे हैं. उनके मुताबिक बिहार प्रदेश कांग्रेस का अध्यक्ष साधु यादव को ही होना चाहिए. इस दावेदारी के लिए उनके पास दलीलें भी हैं. साधु यादव, राहुल गांधी की सोच के मुताबिक युवा हैं. पिछड़ी जाति से आते हैं. आक्रामक तेवर वाले हैं. सबसे बड़ी बात यह कि वह बिहार में अपने युवा समर्थकों के बूते लालू और पासवान की जोड़ी से मुक़ाबला कर सकते हैं. साधु के समर्थकों को यह भरोसा है कि बिहार में कांग्रेस को अगर कोई फिर से जीवन दे सकता है तो वह साधु यादव ही हैं. यक़ीनन उनके समर्थकों की यह मांग भी प्रदेश कांग्रेस की बैठक में सिर उठाएगी. उधर, शकील अहमद के समर्थकों में इस बात को लेकर भी रोष है कि कांग्रेस ने उन्हें दिल्ली की सीट से राज्यसभा में क्यों नहीं भेजा. और अब कांग्रेस उसकी भरपाई शकील अहमद को बिहार का प्रदेश अध्यक्ष बना कर करे. लाज़िमी है कि इस तरह के और भी स्वर नौ अगस्त की प्रदेश कांग्रेस की बैठक में गूंजेंगे. अब यह देखना निहायत दिलचस्प होगा कि विपरीत हालातों में पहले से ही सहमे-सकुचाए जगदीश टाइटलर इस दुश्वार स्थिति का सामना किस कौशल से करते हैं. बिखड़ती कांग्रेस को संवारने के लिए वह किस तरह का जतन कर पाते हैं.

रूबी अरुण
ruby@chauthiduniya.com

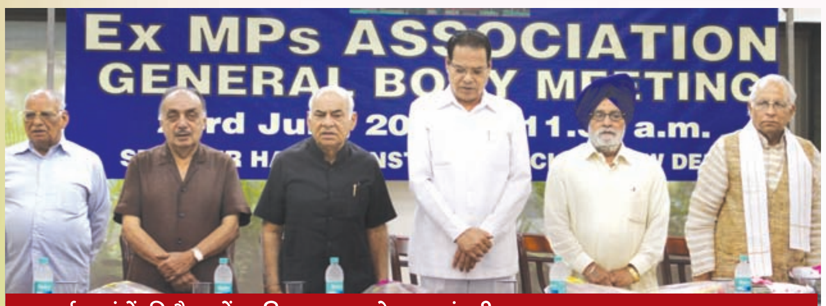

पूर्व सासंदों की बैठक में शामिल हरदयाल देवगुण, इंद्रजीत, मदनलाल ख़ुराना, एसएस लाल, चरणजीत सिंह अटवाल और रत्नाकर पांडे (बाएं से दाएं)

फोटो-*प्रभात पांडेय*

पूर्व सांसदों का भी ख़याल रखे सरकार

पिछले हफ्ते दिल्ली के मावलंकर हॉल में पूर्व सांसदों की बैठक हुई. इसे पूर्व सांसदों का संगठन अपनी वार्षिक आम सभा (जीबीएम) भी कहता है. इस सभा में पूर्व मंत्री मदनलाल खुराना, संतोष मोहन देव, चरणजीत सिंह अटवाल समेत कई पूर्व सांसदों ने भाग लिया. सभा की अध्यक्षता एस एस लाल ने की. मौक़े पर संगठन के महासचिव हरदयाल देवगुन भी उपस्थित थे.

सभा में पूर्व सांसदों ने पूर्व जनप्रतिनिधियों की अनदेखी पर सरकार से नाराज़गी जताई. उनका कहना था कि वे भी कभी सरकार और संसद का अहम हिस्सा रहे हैं. जो अभी वर्तमान में कुर्सी पर विराजमान हैं, वे भी एक दिन पूर्व सांसद कहलाएंगे. इन सभी सांसदों ने अपने कार्यकाल में देश की सेवा की है, लेकिन आज उन्हें नज़रअंदाज़ किया जा रहा है. यह स्थिति सही नहीं है. सरकार को पूर्व सांसदों को उचित सम्मान देना चाहिए.

सभा में मदनलाल खुराना और संतोष मोहन देव को शाल ओढ़ा कर सम्मानित किया गया. सभा में यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि पूर्व सांसदों का एक प्रतिनिधिमंडल अपनी जायज़ मांगों को लेकर संबंधित विभागों के मंत्रियों से मिलेगा. सभा में संगठन की कार्यसमिति का चुनाव भी हुआ. इसमें पूर्व कार्यसमिति को ही निर्विरोध चुन लिया गया.

मदनलाल खुराना को सम्मानित करते अध्यक्ष एस एस लाल

प्रभात पाण्डेय
feedback@chauthiduniya.com

तकनीक सीख ग्रामीण महिलाएं बनीं रोल मॉडल

बात 2007 की है. आम भारतीय ग्रामीण महिलाओं की तरह 24 वर्षीय मीरा सैनी को भी नहीं मालूम था कि उनका करियर किस तरफ़ जा रहा है. राजस्थान के एक दूरदराज के गांव बगड़ की मीरा सैनी वैसे तो स्कूल टीचर थीं, लेकिन उन्हें ज़िंदगी हमेशा नीरस-सी लगती थी. वह हर पल कुछ नया और अलग करने की सोचती थीं, लेकिन ग्रामीण परिवेश के सीमित संसाधन और परंपरागत सामाजिक बंदिशें उनकी सोच के आड़े आ रही थीं. लेकिन आज मीरा सैनी के अलावा बगड़ गांव की अन्य महिलाएं भी कंप्यूटर पर महारथ हासिल कर देश और दुनिया के ग्राहकों को बीपीओ सेवाएं दे रही हैं. जी हां, अब वे अपने समुदाय की रोल मॉडल बन चुकी हैं.

मीरा सैनी ने जब अपने गांव बगड़ में खुले महिला बीपीओ के बारे में सुना तो उन्होंने टीचर की नौकरी को टाटा कह दिया और सोर्स फॉर चेंज (एसएफसी) नामक बीपीओ से जुड़ गईं. मीरा कहती हैं कि यहां पर आमदनी पहले से कुछ कम भले ही हो, लेकिन कंप्यूटर ट्रेनिंग से महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का आइडिया मुझे पसंद आया और मैं एसएफसी से जुड़ गई. दरअसल, एसएफसी बगड़ में चलने वाला देश का पहला महिला बीपीओ है. यह देश-विदेश के ग्राहकों को डाटा एंट्री, डाटा मेंटेनेंस, कांटेक्ट वेरीफीकेशन जैसी सेवाएं देता है. दसवीं पास शोभा एकल विद्यालय में बच्चों को पढ़ाती थी, लेकिन अब वह भी इस बीपीओ से जुड़ चुकी हैं. शोभा कहती हैं-यहां हमें न केवल कंप्यूटर ट्रेनिंग मिलती है, बल्कि अंग्रेजी भी सिखाई जाती है. पहले मुझे समझ नहीं आ रहा था कि पढ़ाई के बाद क्या करूं, लेकिन अब कंप्यूटर सीख कर मैं इसी क्षेत्र में काम करूंगी. ऐसा ही अनुभव रजनी का भी है. उनके दो बच्चे हैं और पति खेती का काम करते हैं. घर के काम से समय निकाल कर वह गांव के बीपीओ में काम करती हैं और जो कुछ वह यहां सीखती हैं, अपने बच्चों को भी उसके बारे में बताती हैं.

अक्टूबर 2007 में दस महिलाओं से शुरू हुए एसएफसी का इस समय दूसरा बैच चल रहा है. फ़िलहाल यहां 40 महिलाएं काम कर रही हैं. महिलाओं को घर का काम भी करना पड़ता है, इस बात को ध्यान में रखते हुए चार और आठ घंटे की दो शिफ्ट में कार्य करने की सहूलियत दी जाती है. ग्रामीण इलाक़ों में किसी नए प्रयोग को लेकर स्थानीय लोगों के मन में तरह-तरह के सवाल उठना स्वाभाविक है. बगड़ में रूरल बीपीओ संचालित करने वाली संस्था सोर्स फॉर चेंज के संस्थापकों को भी कुछ इसी तरह के सवालों का सामना करना पड़ा. जैसे-आप यहां क्यों आए हैं, आपको क्या मिलता है, क्या आपको सर्टीफिकेट मिलता है?

बगड़ में देश के पहले महिला बीपीओ की स्थापना करने जा रहे नौजवानों से स्थानीय लोग अक्सर इस तरह के सवाल पूछते थे. सोर्स फॉर चेंज राजस्थान के झुंझनु जिले के पीरामल फांउडेशन द्वारा संचालित ग्रासरूट डेवेलपमेंट लेबोरेटरी (जीडीएल) का हिस्सा है. जीडीएल ग्रामीण जीवन में सकारात्मक बदलावों पर आधारित आइडिया को सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान करती है.

अमेरिका में जन्मे और वहीं से ऑप्टीकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने के बाद आलिम हाजी चाहते तो किसी कार्पोरेट कंपनी में नौकरी करते हुए आराम की ज़िंदगी बसर कर सकते थे, लेकिन ग्रामीण भारत में एक सकारात्मक बदलाव की चाह उन्हें राजस्थान के गांव बगड़ तक खींच लाई. बगड़ में आलिम सोलर एनर्जी का प्रोजेक्ट लगाना चाहते थे, लेकिन जब उन्हें पता चला कि यहां बिजली पहले से मौजूद है और सस्ती भी है, तो सोलर एनर्जी का विचार छोड़कर उन्होंने अन्य विकल्पों के बारे में सोचना शुरू कर दिया. यहीं पर आलिम की मुलाक़ात कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र की डिग्री प्राप्त गगन राणा से हुई और दोनों ने मिलकर सोर्स फॉर चेंज की शुरुआत कर दी. उत्साही युवाओं की इस टीम में गगन और आलिम के अलावा अमेरिका की केस वेस्टर्न रिजर्व यूनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र में स्नातक कार्तिक रमन, बेल्जियम में पली-बढ़ी और शिक्षित आशिनी कोठारी एवं बायोटेक्नोलॉजी में स्नातक मुंबई के बीपीओ प्रोफेशनल श्रोत कटेवा शामिल हैं. इन युवाओं ने परदेस की गलियां छोड़कर ग्रामीण भारत की पगडंडियों पर चलने का निर्णय किया और अब वे महिलाओं को तकनीक का पाठ पढ़ाकर न केवल उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में जुटे हैं, बल्कि बगड़ जैसे गांव को एक नई पहचान दी है.

एसएफसी के प्रमुख ग्राहकों में दवा निर्माता कंपनी पीरामल ग्रुप, प्रथम एनजीओ, सीआईआई, राजस्थान सरकार और अमेरिका की मेरीलैंड यूनिवर्सिटी शामिल हैं. जबकि आईसीआई, बेंगलुरू स्थित ड्रीम-ए-ड्रीम और जयपुर की अरावली नामक एनजीओ के साथ बातचीत जारी है. हाल ही में प्रथम के लिए एसएफसी में कार्यरत महिलाओं ने 19 हज़ार से अधिक फार्म की डाटा एंट्री 21 दिनों में संपन्न की है. प्रथम के लिए डाटा एंट्री करने वाली 20 संस्थाओं में सबसे गुणवत्तापूर्ण कार्य के लिए एसएफसी को सराहा भी गया है. बीपीओ की शुरुआत से पहले स्थानीय माहौल और लोगों की प्रतिक्रिया जानने के लिए बगड़ का सर्वे किया गया था. सर्वे से पता चला कि ग्रामीण परिवेश में प्रचलित सामाजिक प्रतिबंधों के चलते महिलाओं और पुरुषों से एक साथ काम नहीं कराया जा सकता. यह बात भी सामने आई कि यदि पुरुषों को ट्रेनिंग दी गई तो वे अच्छी नौकरी के फेर में गांव छोड़कर बड़े शहरों की ओर पलायन कर जाएंगे. इसी बात को ध्यान में रखकर महिलाओं को प्रशिक्षित करने का निर्णय लिया गया, ताकि वे अपने घर-परिवार में रहकर स्वयं आत्मनिर्भर बनने के साथ-साथ बच्चों को भी बेहतर शिक्षा दे सकें. आशिनी कोठारी इस आइडिया को बिज़नेस मॉडल के लिए भी अच्छा मानती हैं. लेकिन यह सब इतना आसान नहीं था. टीम के अन्य सदस्यों की अपेक्षा गांव की महिलाओं और उनके परिवार वालों को सहमत करने की ज़िम्मेदारी आशिनी पर सबसे अधिक थी. टूटी-फूटी हिंदी में आशिनी कहती हैं कि यहां उन्हें काफी मेहनत करनी पड़ी. एसएफसी के सीईओ कार्तिक रमन रूरल बीपीओ स्थापित करने की कड़ी में ग्रामीण महिलाओं की ट्रेनिंग को सबसे चुनौतीपूर्ण कार्य मानते हैं. रमन की योजना साल के अंत तक चिड़ावा और झुंझनू जैसे आसपास के क़स्बों में भी एसएफसी के सेंटर खोलने की है और आगामी तीन सालों में एसएफसी में 1000 महिलाएं शामिल करने का वह इरादा रखते हैं. वह कहते हैं कि सोर्स फॉर चेंज का केंद्र ग्रामीण इलाक़े में होने से ग्राहकों को जल्दी विश्वास नहीं होता, जिसके लिए ट्रायल देकर उन्हें संतुष्ट करना पड़ता है. मीडिया में एसएफसी को एनजीओ बताए जाने से कई बार ग्राहकों का विश्वास जीतने में दिक़्क़त आती है. इसलिए रमन स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, हम कोई एनजीओ नहीं बल्कि एक बिज़नेस आर्गेनाइजेशन हैं, जिसका मक़सद ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ दुनिया भर में अपने ग्राहकों को सर्वोत्तम सेवाएं देना है. हमारा लक्ष्य तकनीक पर आधारित विभिन्न उद्यमों द्वारा ग्रामीण भारत की एक लाख महिलाओं को रोज़गार देना है. आलिम बताते हैं कि चार घंटे काम करने वाली महिलाओं को दो हज़ार रुपये और आठ घंटे काम करने वाली महिलाओं को चार हज़ार रुपये प्रतिमाह दिए जाते हैं. उनके मुताबिक, शुरू में परिवार वालों को महिलाओं को घर से बाहर भेजने के लिए विश्वास में लेने में काफी मेहनत करनी पड़ी, लेकिन जब दूसरे बैच के लिए गांव में प्रचार किया गया तो क़रीब 70 महिलाएं एडमिशन के लिए पहुंच गईं. इनमें से इंटरव्यू और अभिरुचि टेस्ट के आधार पर 30 महिलाओं का चयन किया गया. एसएफसी में काम करने की इच्छुक महिलाओं को कम से कम दसवीं पास होना अनिवार्य है. बकौल रमन, लैंग्वेज स्किल्स की अपेक्षा टैक्नीकल स्किल्स सिखाना ज़्यादा आसान होता है. भारत के 14.8 बिलियन की बीपीओ इंडस्ट्री में एसएफसी भले ही एक छोटा प्रयास जान पड़ता हो, लेकिन ग्रामीण भारत के सशक्तीकरण की संभावनाएं इसमें साफ दिखाई पड़ती हैं.

उमाशंकर मिश्र
feedback@chauthiduniya.com

गंगोत्री में ही मैली हुई गंगा

राजकुमार शर्मा

भारतीय जनमानस की जीवन रेखा मानी जाने वाली गंगा अपने घर में ही न सिर्फ़ मैली हो गई है, बल्कि देश की घटिया राजनीति की शिकार भी हो रही है. मैदानी इलाक़े में तो गंगा पहले ही मैली हो चुकी थी, अब ऊपर अपने घर में यानी उद्गम क्षेत्र में भी इसका जल पीने योग्य नहीं रहा. अचरज की बात यह है कि पिछले 24 वर्षों में जब से गंगा एक्शन प्लान शुरू हुआ, तब से गंगा के मैली होने का क्रम बढ़ा ही है. इन 24 वर्षों में तमाम तरह के हानिकारक तत्वों की भरमार हो चुकी है, जो उसकी गुणवत्ता को कम कर रहे हैं. गंदगी को दर्शानेवाले सूचक कोलीफार्म, फेकल कोलाफॉर्म और ई कोलाई की मात्रा समय के साथ बढ़ती जा रही है. वर्ष 1985 में दौरान जोशीमठ, कर्णप्रयाग, रूद्रप्रयाग, श्रीनगर, उत्तरकाशी, टिहरी, देवप्रयाग, व्यसी ऋषिकेश और हरिद्वार जैसे पड़ावों पर गंगाजल के नमूने लिए गए थे. इनमें पानी के भौतिकी, रासायनिक और बायोलॉजिकल गुणों की जांच की गई थी. तब उनमें प्रदूषण के सूचकों की संख्या ज़्यादा नहीं थी. लेकिन 2007-08 तक आते-आते प्रदूषण की मात्रा दर्शाने वाले सूचकों की संख्या में काफी बढ़ोतरी पाई गई. रासायनिक गुणों के तहत बायोलॉजिकल ऑक्सीजन की मात्रा 1985 के मुक़ाबले ढाई गुणा तक कम हो चुकी है. टोटल डिजाल्व सॉलिड और सस्पेंडेड सॉलिड की मात्रा में भी काफी वृद्धि हो चुकी है. 2007-08 के दौरान गोमुख और बदरीनाथ की तुलना में हरिद्वार में ई-कोलाई की मात्रा भी बढ़ चुकी है, जिसे लगभग पांच गुना अधिक पाया गया. हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा किए गए सर्वे में गंगा के मैली होने के साफ संकेत मिले हैं. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के क्षेत्रीय अधिकारी पीके जोशी का मानना है कि 2007 से अब तक के अध्ययन में गंगा में फेकल कोलीफॉर्म की मात्रा मानक से कहीं अधिक पाई गई है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है. बहरहाल, 22 जुलाई को जब लाखों श्रद्धालु सूर्यग्रहण पर पतित पावनी गंगा में डुबकी लगा कर अपने पापों से मुक्ति पाने की कामना कर रहे थे, उसी समय उत्तराखंड विधानसभा में सरकार ख़ुद कह रही थी कि गंगा का जल अब पीने योग्य नहीं है. उत्तराखंड में भारतीय जनता पार्टी की सरकार के पर्यावरण मंत्री विशन सिंह जुफाल ने सदन में स्वीकारा कि ई-कोलीफॉर्म बैक्टीरिया की अधिकता के कारण हरिद्वार में गंगा जल पीने लायक नहीं है.

अगर शिखर पर गंगा का यह हाल है तो नीचे मैदानों में उसकी कितनी दुंदशा हो रही होगी, यह कोई भी अनुमान लगा सकता है. यह सच है कि गोमुख से हरिद्वार पहुंचते-पहुंचते गंगा एक दर्ज़न शहरों का लगभग 89 करोड़ लीटर गंदा पानी अपने में समेट चुकी होती है. 1966 का एक आंकड़ा बताता है कि तब कानपुर की 45 टेनरियां, 10 कपड़े से जुड़ी कंपनियां तथा कई औद्योगिक इकाइयां क़रीब 3.71 करोड़ गैलन गंदा पानी गंगा में बहाती थी. इससे यह साफ होता है कि मानवी ग़लतियों के चलते ही गंगा के मैली होने का सिलसिला शुरू हुआ था. यह समय के साथ-साथ बजाय घटने के और बढ़ता ही चला गया. छोटे-बड़े शहरों से पहले नीचे की ओर से शुरू हुई यह सड़न ऊपर की ओर भी बढ़ चुकी है. नीचे तो गंगा पहले ही प्रदूषित हो चुकी थी, अब वह अपने घर में भी शुद्ध नहीं रह गई है.

पूरा देश गंगा को सिर्फ़ एक नदी ही नहीं, अपनी सनातन संस्कृति एवं सभ्यता के आईना के रूप में देखता रहा है. इसकी अविरल धारा पर भारतीय जनमानस को इतना विश्वास रहा है कि भारतीय माताएं अपनी पीढ़ियों को इस तरह आशीष देती थीं-अचल होय अहिवात तुम्हारा, जब लगि गंग जमुन जल धारा. इन नदियों में बढ़ते प्रदूषण एवं टूटती उनकी जल धाराओं ने हमारी माताओं को अपने आशीर्वाद को भी बदलने के लिए सोचने पर मजबूर कर दिया है. विश्व में और कोई संस्कृति किसी नदी के साथ इस तरह जुड़ी हुई नहीं दिखती. आज भी देश की चालीस करोड़ आबादी गंगा के किनारे निवास करती है, जिसमें लगभग 20 लाख लोग रोज़ाना मोक्ष की कामना लेकर डुबकी लगाते हैं. विश्व जनमानस और विज्ञान को गंगा जल अपनी पवित्रता से हमेशा चुनौती देती रही है. आस्था की बोतलों में बंद कर देने पर भी गंगाजल सड़ता नहीं, क्योंकि उसमें घुल चुके ऑक्सीजन को पानी में बरकरार रखने की विलक्षण क्षमता है. भारतीय जनमानस ने ऐसी गंगा को इस हद तक प्रदूषित करने की जो ग़लती की है, वह आज स्वयं उसके लिए आत्मघाती सिद्ध होने लगा है.

भारतीय जनमानस को जीवन देने वाली गंगा को नवजीवन देने का काम पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने शुरू किया था, जिसे गंगा ऐक्शन प्लान का नाम दिया गया था. इसके तहत 1,200 करोड़ रुपये भी ख़र्च किए गए. लेकिन इसमें कोई शक़ नहीं कि यह पूरी धनराशि भ्रष्टाचार को भेंट चढ़ गई. सरकार सफाई पर प्रतिवर्ष 350 करोड़ रुपये ख़र्च करती है, पर वह धनराशि अपने उद्देश्य में लगने के बजाय भ्रष्ट अधिकारियों और नेताओं की जेब में चली जाती है. इस धनराशि का कोई असर गंगा को बचाने में नहीं दिखता. दुनिया के इतिहास में राइन नदी आज से 25 साल पहले सबसे गंदी नदी में मानी जाती थी. लेकिन आज आधा दर्जन देश उसका पानी पीने के लिए प्रयोग कर रहे हैं. इससे यह सिद्ध होता है कि यदि पूरी ईमानदारी से प्रयास किए जाएं तो निश्चित रूप से गंगा को भी नवजीवन दिया जा सकता है.

feedback@chauthiduniya.com

शासन कैसे बने सुशासन?

फोटो-प्रभात पाण्डेय

अबुसालेह शरीफ

सफल और मानवीय विकास को समझने के लिए ग़रीबी को बहुआयामी तरीक़े से समझना, उनके समग्र विकास के लिए काम करने और स्वाधीनता व समानता के सिद्धांतों का पालन करना ज़रूरी है. इसके साथ ही एक ऐसा वातावरण बनाना ज़रूरी है, जहां सबके लिए मौक़ा मुहैया हो और सृजनात्मकता को खिलने और फूलने का मौक़ा मिले. नेहरू के समय से ही भारत इस बहुलतावादी चिंतन को समझता है. नेहरू ने शुरुआत में ही ग़रीबी, अज्ञानता, बीमारी और असमानता को ख़त्म करने की वकालत की थी. यह सभी चिंताएं आज तक की तारीख़ तक चुनौती बनी हुई है. हालांकि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तौर पर भारत में हाल ही में बहुत सारे बदलाव आए हैं. ये निरंतर बदलाव इतने ताक़तवर हैं कि इनको नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता. इसलिए उचित सवाल यही होगा कि उभरती सामाजिक- राजनीतिक परिस्थिति को किस तरह से बदला जाए, ताकि असमानता और ग़रीबी को मिटाया जा सके.

(देखें ग्राफ -1)

मुख्य तौर पर ग़रीबी मिटाने के लिए ये तीन प्रक्रियाएं ज़रूरी होंगी.

1. रोज़गार के मौक़ों में बढ़ोतरी के साथ ही सही मज़दूरी और राष्ट्रीय संपदा का प्रभावी बंटवारा भी ज़रूरी है. ताकि जनसामान्य के लिए आय बढ़ाई जा सके.
2. उत्पादित और उपभोग लायक वस्तुओं और सेवाओं के दाम को स्थिर करना. साथ ही भारत के हरेक हिस्से में बाज़ार को इस तरह बनाना. ताकि आवाजाही के ख़र्च को बचाया जा सके.
3. कल्याणकारी सेवाओं जैसे आय के हस्तांतरण, सब्सिडी, उचित मूल्य की वस्तुओं के वितरण और इस तरह की तमाम सेवाओं में नियंत्रित तौर पर हस्तक्षेप किया जा सके या सुरक्षा दायरे में लाया जा सके.

फ़िलहाल हम समाज के तीन प्राथमिक कारकों- सरकार, बाज़ार और नागरिक समाज-में जो नया और गतिशील संतुलन देखते हैं या उसका अध्ययन करते हैं तो यही पाते है कि शुरुआत सरकार से ही होगी. वह सरकार ही है जिसकी मुख्य भूमिका मानव विकास और समानता को सुनिश्चित करने में स्वाधीन भारत में इस भूमिका को बेहद गंभीरता से लिया और नेहरू के नेतृत्व में एक समाजवादी कार्यक्रम अपनाया. नेहरू ने एक लंबे समय तक देश की सेवा की. जिस दौरान भारी मात्रा में उद्योग और सेवाओं को मुहैया कराने के लिए जनता को केंद्र में रखा. यह माना जाता था कि उत्पादन, मूल्यों, निवेश और वैश्विक व्यापार पर केंद्रीय नियंत्रण रोज़गार मुहैया कराने, तेज़ आर्थिक विकास करने और भारत को स्वावलंबी बनाने के लिए आवश्यक है. उसके बाद के चार दशकों में भारत ने कई क्षेत्रों में काफी बढ़िया काम किया. हालांकि मानव विकास सूचकांक दक्षिण एशिया के कुछ ही देशों (जैसे श्रीलंका) के मुक़ाबले हमारी हालात हल्की बेहतर बताता है. ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत 80 के दशक के आख़िर में 55 से 39 फ़ीसदी ही हो पाया था. 1990 के ही दौरान औसत आयु 32 से बढ़कर 55 वर्ष हुई थी और शिशु मृत्यु दर 175 प्रति 1000 से घटकर 100 हो गई थी.

यह अब जानी-मानी बात है कि भारत कम सकल घरेलू उत्पाद(जीडीपी) के कुचक्र से निकल गया है और अब तो इसकी विकास दर सात फ़ीसदी (मंदी के इस दौर में) के आसपास आंकी जा रही है. ऊंची जीडीपी हाल ही में आया हुआ एक रुझान है और यूपीए सरकार ने एक निश्चित समय के लिए सात से आठ फ़ीसदी तक बरकरार रखने की बात दोहराई है. हालांकि यह तो भविष्य ही बताएगा कि लक्षित विकास दर पाया गया और स्थायी हो सका या नहीं?

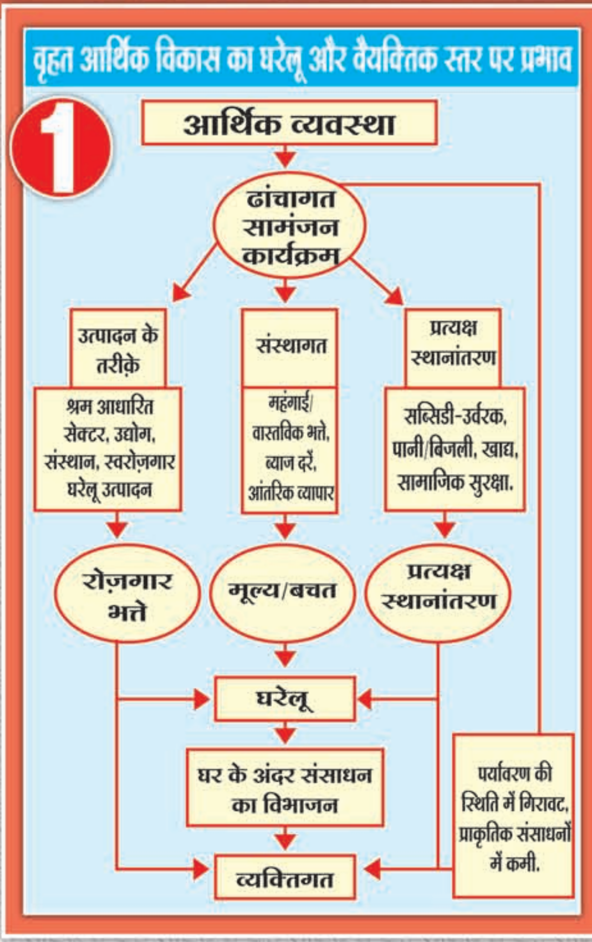

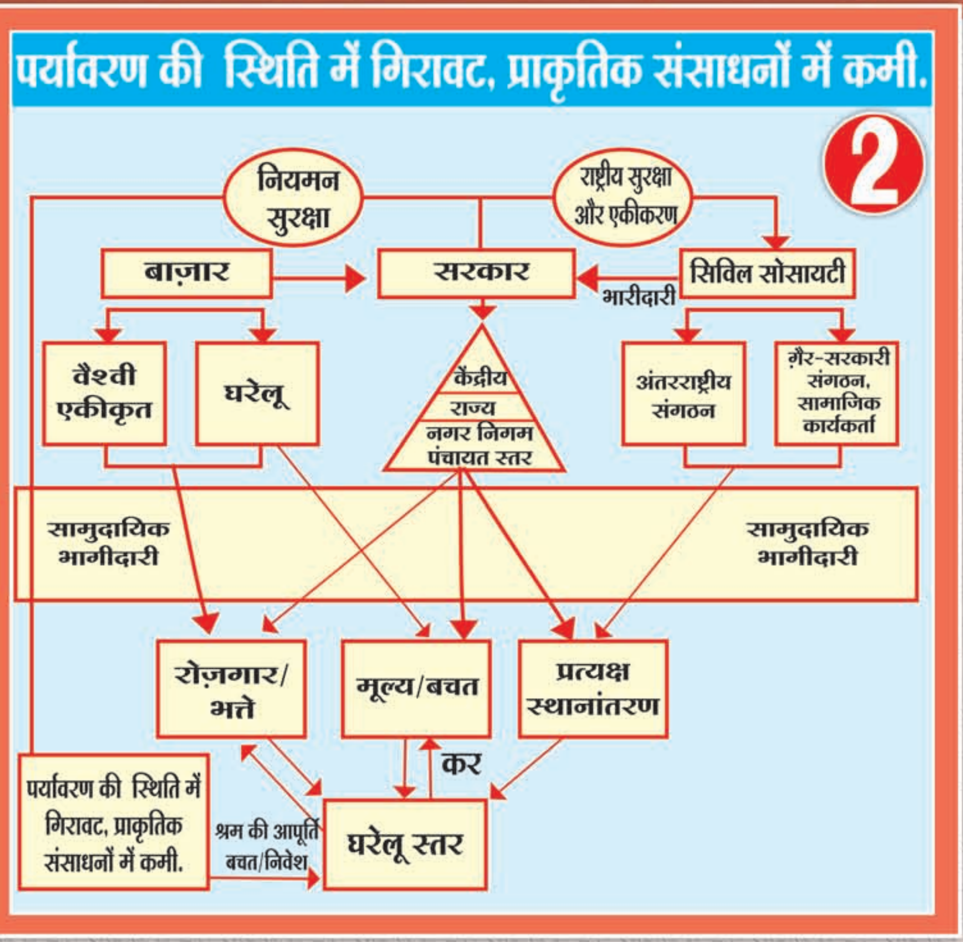

एक गतिशील और नया नेतृत्व

उदारीकरण के पहले के कमज़ोर शासन का दोष आमतौर पर गहरे तक जड़ जमाए भ्रष्टाचार, नौकरशाही के नकारापन, लालफीताशाही और लाइसेंस-कोटा राज की वजह से प्रतियोगिता और नवीनता की कमी को बताया जाता है. हालांकि, ग़रीबी उन्मूलन और समानता लाने में जो सबसे बड़ा बाधक तत्व बताया जाता है, वह ट्रिकल-डाउन (ऊपर से नीचे की ओर आना) का सिद्धांत माना जाता है. हालांकि पंचायतों का विचार 1970 के दशक के आख़िरी दौर में कुछ राज्यों में आ गया था. प. बंगाल और कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों में ग्रामीण विकास परियोजनाओं को रफ़्तार देने के लिए पंचायत प्रतिनिधियों को फंड के साथ-साथ कुछ अधिकार भी दिए गए. वैसे तो 22 दिसंबर 1992 के पहले तक यह संभव नहीं था कि पंचायतों को संवैधानिक दर्जा मिला हो. इसी दिन कांग्रेस सरकार ने संविधान का 73वां संशोधन पारित किया था, जिसकी वजह से पंचायतों को न केवल संवैधानिक रुतबा मिला बल्कि इससे शासन की प्रक्रिया और विचारधारा में ही मूलभूत बदलाव ला दिया. इसने ट्रिकल-डाउन सिद्धांत की जगह बॉटम-अप (समाज के सबसे निचले तबके से ऊपरवाले तबके की ओर विकास का रुख़) सिद्धांत को बढ़ावा दिया. इसके साथ ही ज़मीनी स्तर पर लोगों की भागीदारी को भी अहम बनाया गया. गांव के स्तर पर स्थानीय प्रशासन को पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से और शहरी इलाक़ों में नगर-निगमों और परिषदों की स्थापना (74वां संविधान संशोधन) को एक अलग और रेडिकल राजनैतिक प्रयास माना गया. इनके मार्फ़त सत्ता और संसाधनों को देश के बिल्कुल दूर-दराज़ के गांवों में रहने वाले लाखों ग़रीबों तक पहुंचाने का साधन माना गया. यह सचमुच ग़रीबों के लिए उम्मीद की एक किरण थी. यह भी उम्मीद की गई कि बढ़ती पारदर्शिता भ्रष्टाचार पर लगाम लगाएगी, सरकार और आम आदमी के बीच सूचनाओं का प्रवाह दोनों तरफ़ से बढ़ेगा, स्थानीय स्कूलों और स्वास्थ्य केंद्रों में सरकारी कर्मचारियों का ग़ैरहाज़िर होना कम होगा, क्योंकि स्थानीय लोग ही उसका निरीक्षण करेंगे और सरकारी कार्यक्रमों में भागीदारी से उनका चिंतन भी बेहतर होगा. सबसे बढ़कर यह है कि सरकारी नीतियां स्थानीय लोगों की निगरानी से बेहतरीन हो सकेंगी चूंकि वे प्रतिनिधि स्थानीय हालात को बेहतर समझ सकते हैं. अंतिम तौर पर यह कि स्थानीय लोग विकास परियोजनाओं में अपनी मिल्कियत समझ सकेंगे ताकि वे स्थायी लाभ दे सकें.

इस तरह की कई पंचायतों के उदाहरण हैं, जो इनमें से एक या दो उद्देश्यों में सफल रही हैं लेकिन जब पूर्ण लक्ष्य की बात हो तो सभी पंचायतें उम्मीद पर खरी नहीं उतरी हैं. ज़ाहिर तौर पर जनहित के जज़्बे की कमी और भ्रष्टाचार के जाल के कारण ही ये पंचायतें ग़रीबी और सामाजिक बहिष्कार मिटाने में असफल रही हैं. लेकिन जिस सबसे बड़े मुद्दे से इन्हें निपटना है वह नगरपालिका या पंचायत स्तर पर नेतृत्व की कमी का है. इन स्तरों पर नेतृत्व अधिकांशत: दिशाहीन और अपनी भूमिका, नियमों और स्थानीय नौकरशाही की तुलना में अपनी अहमियत को समझ पाने में असफल रहा है.

अब उत्तर प्रदेश में लागू की गई मध्याह्न भोजन(मिड-डे मील) योजना को ही लें. यह योजना सर्वोच्च न्यायालय के बार-बार याद दिलाने के बाद ही आधिकारिक तयशुदा तारीख़ के काफी दिनों बाद लागू की जा सकी. लखनऊ के पड़ोसी ज़िले सीतापुर में मिसरीपुर गांव के मुखिया इस योजना को लागू करने के तरीक़ों और उपायों के बारे में जानकारी की शिकायत करते हैं- उदाहरण के लिए हमारे गांव के तीन स्कूलों को बर्तनों के लिए 1200 रुपये दिए गए हैं, लेकिन मसालों, ईंधन और तेल के बारे में क्या प्रावधान हैं? हमें नहीं पता कि यह कितने दिनों पर मिलेंगे. हमें अचानक ही एक ऐसी योजना लागू करने को कहा गया है जिसके बारे में हम कुछ नहीं जानते. सरकार ने इस मामले में हमें भरोसे में नहीं लिया. *(एजुकेशन वर्ल्ड, 2004).*

गांव और पंचायत स्तर की प्रशासनिक और लेखे-जोखे की व्यवस्था नाकारा सी हैं और अक्षमता, दुरुपयोग और ग़ैर-पारदर्शी अंदाज़ के शासन को बढ़ावा देते हैं. हाल की व्यवस्था में जो आर्थिक सुधारों, सार्वजनिक समूहों (केंद्रीय और राज्य दोनों स्तर पर) का आकार घटाने ने ज़ाहिर तौर पर ज़मीनी स्तर पर सेवाएं मुहैया कराने वालों को प्रभावित किया है. जनप्रतिनिधियों को स्थानांतरित नहीं करने की नीति ने घरेलू और ग्रामीण स्तर पर सेवाओं को प्रभावित किया है, जैसे- प्राथमिक और शुरुआती शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं और बाल-पोषण जैसी सेवाओं को. कुछ इलाक़ों में तो सरकार और उसके अमले में ज़रूरी से अधिक अधिकारी है जबकि कुछ अहम इलाक़ों में अधिकारियों की घोर कमी है, ख़ासकर गांवों के इलाक़ों में पर्याप्त शिक्षक और डॉक्टरों की कमी तो साफ-साफ दिखती है. इन सेवाओं के जनता तक पहुंचाने की व्यवस्था में तभी सुधार हो सकता है जब हम अपने आधारभूत ढांचे में पर्याप्त बदलाव करें और कुशल व प्रशिक्षित कर्मचारियों को निचले और छोटे स्तरों पर तैनात करें. इसी वजह से शासन के तीसरे स्तर (पढ़ें स्थानीय) पर ज़मीनी स्तर के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने की ज़रूरत है. सबसे ग़रीब वर्ग के लिए योजनाओं को लागू करने में एक अजीब तरह का अस्थायी नज़रिया और उदासीन रवैया अपनाया जाता है. सेवा प्रदान करने के तरीक़े में चौतरफ़ा सुधार से ही इस तरह की योजनाओं को लागू करने में गंभीरता लाई जा सकती है. ज़मीनी स्तर के शासन की असफलता का सबसे नाटकीय उदाहरण सिविल सोसायटी का ज़मीनी विकास कार्यों में कोई रुचि नहीं दिखाना है. ग़ौरतलब है कि पंचायत व्यवस्था सिविल सोसायटी के विकास योजनाओं को बनाने और लागू करने में भागीदारी के लिए सबसे सही जगह थी. भारत में विकास की पूरी प्रक्रिया में ग़ैर-सरकारी संगठनों की बाढ़ आना दरअसल बाज़ार के उदारीकरण का नतीजा है, जिसकी वजह से देश में ख़ासी मात्रा में सामाजिक पूंजी के आने के साथ ही एक ऐसी संस्कृति भी विकसित हुई, जो अंतरराष्ट्रीय विकास संगठनों जैसे संयुक्त राष्ट्र वग़ैरह की देन थी.

भारत का राजनीतिक विकेंद्रीकरण

1957	स्थानीय स्तर पर सरकार के लिए केंद्र सरकार का पहला प्रयास
1963	वित्तीय हस्तानांतरण पर सिफ़ारिशें
1978	पंचायतों को विकास-आधारित की जगह राजनीतिक संस्थानों का दर्जा
1993	73वें संविधान संशोधन का लागू होना
1996	केंद्र सरकार की 73वें संशोधन को जनजातीय इलाक़ों में पहुंचाने की पहल

ख़ास हुआ बाज़ार

बाज़ार के उदारीकरण के पीछे का कारण अगर देखें, तो पाएंगे कि समाजवाद के ऊंचाई पर रहने के दौर में भी यह बात हमेशा महसूस की जाती रही कि ग़रीबों को शायद विकास में हिस्सा नहीं मिल पा रहा है. व्यवस्था के असफल होने के पीछे उत्पादन और निवेश पर नौकरशाही का शिकंजा कसे रहना बताया गया. आख़िरकार 1991 में जब भारतीय अर्थव्यवस्था के सामने भुगतान का गहरा संकट आया तो सरकार ने ऐतिहासिक उदारीकरण की शुरुआत की. हालांकि, राज्यों और अलग इलाक़ों के बीच सामाजिक-आर्थिक असमानता भी काफी बढ़ी, भले ही इसके लिए शुरुआती स्थितियां और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं के नई स्थितियों के मुताबिक ढलने को ज़िम्मेदार समझा गया. उस समय से आज की तारीख़ तक सुधार जारी हैं. इसका ध्येय दरअसल उद्योगों को और सक्षम, अधिक प्रतियोगी बनाना है, ताकि संसाधनों का प्रभावी इस्तेमाल कर उच्च स्तर पर लागत वसूल की जा सके. इस प्रक्रिया से करों के मार्फत अधिक सार्वजनिक राजस्व वसूल किया जा सकता है, और इनका इस्तेमाल सामाजिक निवेश में हो सकता है. यह बात दीगर है कि देश की 50 फ़ीसदी जनता अब भी निर्बल और लाचार है. सामाजिक निवेश के बाद भी ग़रीबों को पर्याप्त गुणवत्ता और मात्रा वाले निवेश को महसूस करने में कठिनाई होती है. ग़रीबों का 75 फ़ीसदी हिस्सा गांवों में रहता है और उनमें से अधिकतर खेती और उससे जुड़े कामों पर निर्भर रहते हैं. उदारीकरण को ग़रीब-विरोधी और अमीर-समर्थक मानने का बड़ा कारण इस प्रक्रिया से गांवों और खेती को बाहर रखना है. स्थायी तौर पर ग़रीबी को हटाने में बाज़ार की भूमिका अहम है. इसके समाधान के लिए यही बचता है कि हरेक दावेदार को बराबर का मौक़ा मुहैया कराया जाए और उन मूलभूत मुद्दों का समाधान किया जाए, जो मुक्त बाज़ार की भावना को ही बाधित करते हैं. सरकार और निजी क्षेत्र को एक साथ मिलकर यह तय करना होगा कि वे सारे खिलाड़ियों को एकसमान मौक़ा दें, भागीदारी को बढ़ावा दें, प्रतियोगिता का सम्मान करें और जोखिम से सुरक्षा दें. सबसे अहम बात यह है कि संसाधनों का स्थायी इस्तेमाल तय करें. इस वजह से सरकार अपना काम तभी बेहतर ढंग से कर सकती है, जब वह उत्पादन का जिम्मा मुक्त बाज़ार को दे, जिसने हमेशा नए प्रयोग किए हैं, और वह अपने मुख्य कर्तव्य को पूरा करे. यानी, न्याय, समानता और नागरिकों को सुरक्षा देते हुए उनको राष्ट्रीय एकता के भाव से भर दे (देखें ग्राफ-2).

आख़िर लोकशाही में एक सरकार के और सरोकार हो भी क्या सकते हैं? अंत में, बात बस इतनी ही कि किसी भी समाज के समग्र विकास के लिए उसके हरेक अंग को अपने कर्तव्य पूरे करने होंगे और अधिकारों के लिए आवाज़ उठानी ही होगी.

सीनियर रिसर्चर, अंतरराष्ट्रीय खाद्य अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली.

feedback@chauthiduniya.com

मार रही महंगाई

महंगाई की माया अजीब है. जहां दाल और सब्ज़ियों की क़ीमतें आसमान छू रही हैं, खाने-पीने की चीज़ें आमजन की औकात से बाहर हो रही हैं, वहीं हमारी महंगाई दर माइनस में चल रही है. यानी सरकारी आंकड़े महंगाई घटने की बात कर रहे हैं. ख़ैर इसमें कितनी सच्चाई है यह तो थाली में घटते व्यंजन ही बताते हैं. वैसे जिस दर से दाल और सब्ज़ियों की क़ीमतें बढ़ रही हैं, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि आने वाली पीढ़ियों के लिए इन्हें अपनी थाली में देख पाना सपना हो जाएगा. अभी की दर के आधार पर गणना करें तो हमारी थाली जो फ़िलहाल 40-50 रुपये की है, वह अगले पचास सालों में 1200 रुपये की हो जाएगी. अरहर दाल जो अभी 80-90 रुपये की है, उस समय 18000 रुपये की हो जाएगी. हो सकता है कि पचास साल बाद सोने-चांदी की तरह अरहर और चने की दाल भी बैंक के लॉकरों में नज़र आए.

कैसे जानते हैं हम कितनी है महंगाई

भारत महंगाई दर की गणना के लिए थोक मूल्य सूचकांक (होलसेल प्राइस इंडेक्स या डब्ल्यूपीआई) के आधार पर करता है. डब्ल्यूपीआई मापने के लिए 435 वस्तुओं और उनकी क़ीमतों को आधार बनाया जाता है. चुनी गईं वस्तुएं अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं का प्रतिनिधित्व करती हैं और पूरी अर्थव्यवस्था का निकटतम डब्ल्यूपीआई बताती हैं. हर वस्तु का अलग-अलग डब्ल्यूपीआई माप लिया जाता है और फिर उन सभी वस्तुओं के सम्मिलित डाटा के आधार पर ओवरऑल डब्ल्यूपीआई तय की जाती है. अर्थव्यवस्था पर किसी वस्तु के प्रभाव के आधार पर डब्ल्यूपीआई में उसका महत्व रखा जाता है.

1902 में डब्ल्यूपीआई के आधार पर महंगाई मापने का यह तरीक़ा विकसित हुआ, तब से 70 के दशक तक यही दुनिया भर में महंगाई मापने का आधार बना रहा है. उसके बाद अधिकतर देशों ने नए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (कंज़्यूमर प्राइस इंडेक्स या सीपीआई) को अपना लिया है. सीपीआई में सेवाओं और वस्तुओं के तय मूल्य और उपभोक्ताओं द्वारा चुकाई गई क़ीमत के आधार पर महंगाई मापी जाती है.

आइए, महंगाई की घटती दर और आम आदमी की बढ़ती समस्याओं के इस घालमेल को आंकड़ों के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं-

महंगाई दर

6 जून 2009	13 जून 2009	20 जून 2009	27 जून 2009	4 जुलाई 2009	11 जुलाई 2009	18 जुलाई 2009
-1.61%	-1.14%	-1.30%	-1.55%	-1.21%	-1.17%	-1.54%

दालें हुईं महंगी

अरहर	9%
चना	4%
मूंगा	3%
मसूर	3%
उड़द	2%

खाद्य पदार्थों में महंगाई दर
(हफ्ते भर में, 18 जुलाई को ख़त्म हुए सप्ताह के आधार पर)

कुल खाद्य पदार्थ	1.2%
सब्ज़ी	4.9%
दाल	4.2%
मांसाहार	3.5%

ग्राफिक्स-*अनवारुल हक*

(सप्ताह भर में हुई वृद्धि, 18 जुलाई को खत्म हुए सप्ताह के हिसाब से)

आंकड़े क्यों नहीं दिखाते सही तस्वीर

दोनों तरीक़ों में से सीपीआई को महंगाई मापने का ज़्यादा सही तरीक़ा समझा जाता है, क्योंकि इसमें उपभोक्ता के नज़रिए से दर मापी जाती है, न कि थोक विक्रेताओं के नज़रिए से. इसके अलावा डब्ल्यूपीआई पिछले साल के होलसेल दामों पर आधारित होती है, यही वजह है कि इससे वर्तमान महंगाई का सही पता नहीं चल पाता. उदाहरण के लिए पिछले साल कच्चे तेल की क़ीमत बहुत ज़्यादा थी, जिससे डब्ल्यूपीआई ऊपर था. अब चूंकि कच्चे तेल की क़ीमत कम हो गई है, जिससे डब्ल्यूपीआई भी आज काफी नीचे है. इससे तय की गई महंगाई की दर तो कम मान ली गई, लेकिन दाल समेत समेत लगभग सभी ज़रूरी चीज़ें महंगी हो गई हैं. वैसे उम्मीद की जा रही है कि भारत जल्द ही डब्ल्यूपीआई को छोड़ सीपीआई के तरीक़े को अपना लेगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

सभी फोटो-प्रभात पाण्डेय

ग़रीबी पर चिंता में गंभीरता नहीं

बजट और उस पर आई मीडिया की प्रतिक्रिया में से एक अहम सवाल ग़ायब है-आख़िर ग़रीबों का क्या होगा? हालांकि नरेगा (राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम) को और पैसा मिल गया है, लेकिन यह देश भर के गांवों की जनता को 100 दिनों तक कम-से-कम मज़दूरी पर काम देने की ज़रूरत के लिए नाकाफी है. और इसमें होने वाली गड़बड़ियों को ध्यान में रखने के बाद तो साफ है कि ऐसे कई परिवार इसकी जद से फिर भी छूट जाएंगे, जो इस योजना के लक्ष्य में हैं. ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को 25 किलो सब्सिडी वाला चावल देने की श्रीमती सोनिया गांधी की घोषणा अंत्योदय योजना से भी कम है. इसके अलावा बड़े पैमाने पर असल ग़रीबों को बीपीएल कार्ड ही नहीं मिल पाते. वैसे भी ग़रीबी की आधिकारिक परिभाषा पर ही सवाल उठाए गए हैं. असंगठित क्षेत्र पर बनी आधिकारिक कमिटी (अर्जुन सेनगुप्ता कमिटी) ने पाया है कि 77 फ़ीसदी से अधिक लोग 20 रुपये से कम पर गुज़ारा करते हैं. इससे साफ है कि ग़रीबों की असली संख्या सरकारी आंकड़ों से बहुत ज़्यादा है. आधिकारिक राष्ट्रीय सैंपल सर्वे डाटा के आधार पर अर्थशास्त्री उत्सा पटनायक ने ग्रामीण ग़रीबी को इससे भी अधिक माना है, 80 फ़ीसदी से भी ज़्यादा. उन्होंने यह भी दिखाया है कि दालों और अनाजों की प्रति व्यक्ति खपत भी कम हुई है.

इन परिस्थितियों में यह तो साफ है कि ग़रीबी उस आंकड़े से काफी ज़्यादा है जिसे अधिकारी मानते हैं. नव-उदारवादी अर्थशास्त्री, जो बजट की शक्ल तय करने में अहम रोल निभाते हैं, इस सच्चाई को जानबूझकर नज़रअंदाज़ करते रहे हैं ताकि वे आर्थिक सुधारों को सफल करार दे सकें. हालांकि इसके नतीज़े बड़े असर डालते हैं. भारत वैश्विक मंदी के कारण एक बड़े संकट से जूझ रहा है. इसकी विकास दर गिरी है और बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ रही है. इस संकट से निपटने का कीनेसियन तरीक़ा, जो 1930-1940 में अमेरिकी नए सौदे में राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने अपनाया था, बड़े सरकारी निवेशों के ज़रिए रोज़गार बढ़ाने का है. इस तरीक़े में ज़रूरी फेरबदल कर इसे अपना सकते हैं. इससे बड़ी संख्या में रोज़गार बढ़ेंगे और आय भी बढ़ेगी. बढ़ी आय का मतलब ज़्यादा उपभोग और बड़े बाज़ार होंगे. इससे उन बाज़ारों से, ख़ासकर गांवों में, छुटकारा मिल जाएगा जो बंद और सुस्त पड़े हैं. सेवा और वस्तुओं की बढ़ी मांग से उत्पादन में बढ़ोतरी होगी, जिससे रोज़गार के अवसर और बढ़ेंगे. यह कीनेसियन मल्टीप्लायर या गुणक कहलाता है.

सरकार ठीक इसका उलटा कर रही है. सरकारी क्षेत्र के विनिवेश से यह रोज़गार कम कर रही है. कामगारों को मिलने वाली सुविधाएं ऐसी पेंशन योजनाओं के मार्फत कम की जा रही हैं, जिनमें पेंशन फंड को निजी कंपनियों में भी रखा जा सकता है. हालांकि काम का अधिकार मुहैया कराना सरकार को दिए गए निर्देशित सिद्धांतों में है, बेरोज़गारी रोकने के लिए कोई कारगर उपाय नहीं किए जा रहे. बाज़ार और वित्तीय संस्थाओं में लिक्विडिटी बढ़ाने की नव-उदारवादी संजीवनी असफल होनी ही है. अगर ग़रीबी इतनी ज़्यादा विस्तृत है तो मांग का गिरना तय है. ऐसे में बेरोज़गारी और बढ़ेगी और नतीजतन कीनेसियन मल्टीप्लायर उलट जाएगा. गांवों में फैली निराशा और किसानों की आत्महत्या दिखाते हैं कि आर्थिक स्थिति कितनी ख़तरनाक है. तो फिर सरकार ऐसे क़दम क्यों उठा रही है?

ऐसा इसलिए है क्योंकि सरकार, ख़ासकर बड़े पूंजीवादियों का, अमीरों का प्रतिनिधित्व करती है. ये लोग ही विनिवेशित सरकारी क्षेत्र की कंपनियों को ख़रीद रहे हैं. ये लगातार ऐसी ख़रीद कर रहे हैं जैसा कि सरकारी होटलों के मामले में हुआ है. अब वित्त मंत्री कोयले की खदानों को बेचने की योजना बना रहे हैं. यह बड़ा अजीब है, जब भारत पहले से ही ऊर्जा की कमी से जूझ रहा है और उसे नॉन-कार्बन इंधन की उपलब्धता से पहले फॉसिल इंधनों की ज़रूरत है. लेकिन बजट में नवीन ऊर्जा पर किया गया निवेश ज़रूरत से बेहद कम है.

पिछली सरकार ने वामदलों के साथ एक न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर हस्ताक्षर किए थे. उसमें नरेगा की तर्ज पर शहरी ग़रीबों के लिए भी योजना की बात थी. इसे आगे नहीं बढ़ाया गया है. सालाना प्रति परिवार सिर्फ़ 100 दिनों का रोज़गार मुहैया कराने के बावजूद भी इस योजना ने गांवों के संकट को ख़त्म करने में भूमिका निभाई है. इससे ग्रामीण बाज़ारों को बढ़ावा मिला है. लेकिन शहरों में भी ऐसा ही संकट है, जिस पर शहरों में जीविका की तलाश में आए गांव के लोगों ने और दबाव बढ़ाया है. इन लोगों को भी नरेगा जैसी ही एक योजना की ज़रूरत है. हालांकि ऐसी किसी योजना का बजट में कोई ज़िक्र नहीं था.

हमारे आर्थिक-नीतिकारों को लगता है कि वे अर्थव्यवस्था को पुनर्परिभाषित करके ही क्रांति ले आएंगे. बीपीएल का मानक ग़लत रूप से नीचे के स्तर पर तय किया जाए, और फिर उन्हें कम-से-कम लाभ दिए जाएं. उदाहरण के तौर पर नरेगा में ही चार वयस्कों वाले एक परिवार को प्रति व्यक्ति सिर्फ़ 25 दिन का काम मिलेगा. सोने पर सुहागा यह है कि अभी तक किसी भी राज्य में काम देने की औसत सालाना प्रति परिवार 90 दिन का भी नहीं है. यानी सारी वाककुशलता और कलाबाज़ियों के बीच यह बजट अमीरों के लिए ही है.

कमल मित्र चिनॉय

(लेखक जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

कश्मीर को चाहिए एक ताक़तवर मुख्यमंत्री

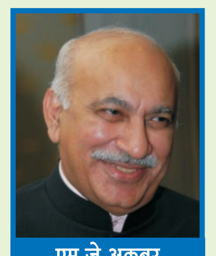
एम जे अकबर

हमारे सार्वजनिक जीवन में कुछ ही रसीले स्कैंडल होते हैं. ऐसा इसलिए नहीं है कि हमारे नेता बहुत संयमी हैं, बल्कि इसलिए कि जनता ज़रूरी तौर पर सेक्स को स्कैंडल से जोड़ कर नहीं देखती. मज़े की बात यह है कि राजनेता अब भी सोचते हैं कि यौन संबंधी आरोप लगाना जायज़ है. ख़ासकर अगर आप उमर अब्दुल्ला की तरह अच्छे दिखते हैं, तो इस तरह की बाधाएं तो आनी ही हैं.

तो, उमर के जल्दबाज़ी में दिए गए इस्तीफ़े का क्या मतलब है? जब आप कश्मीर के चंचल पानी में प्रवेश करते हैं तो आप कभी न कभी पानी के अंदर की चट्टान से अपना अंगूठा घायल कर ही

कश्मीर की जनता को उमर अबदुल्ला से अति शुद्धता नहीं चाहिए, उन्हें तो बस अपने लिए एक बेहतर ज़िंदगी चाहिए. जीवन का मतलब सुरक्षा, बुनियादी सुविधाएं और आत्मसम्मान की सलामती से है. युवा उमर की ईमानदारी और आशावान व्यक्तित्व से काफी उम्मीदें जगी हैं, जो ख़तरनाक भी हैं, क्योंकि बड़ी उम्मीदों से ही बड़ी निराशा भी पैदा हो सकती है.

लेंगे. उमर की जल्दबाज़ी में एक अपरिपक्वता दिखती है. उनके पिता फारूक़-जो अपनी जवानी के दिनों में डल झील के आसपास मोटरसाइकिल की रेस लगाने के लिए मशहूर रहे हैं-ने इसका एक बेहतर रास्ता निकाल लिया होता, ताकि जनता भी आश्वस्त हो जाती और विपक्ष पर हंसती ही. हालांकि हंसने के लिए सबसे ज़रूरी यह जानना है कि कैसे और उससे भी अहम यह कि कब हंसना है.

उमर ने इस्तीफ़े की पेशकश की, क्योंकि वह इन आरोपों के साथ काम नहीं कर सकते थे. आख़िर उन्होंने ऐसा क्यों नहीं सोचा कि वे जब तक आरोपों से मुक्त नहीं हो जाते तब तक और भी मेहनत करके काम करते रहें. सभी मान रहे थे कि वह निर्दोष हैं. मतदाताओं ने उन्हें काम करने के लिए वोट दिया था, न कि इसलिए कि वह विधानसभा की खींचतान में भावुक हो जाएं.

आमतौर पर हमारे देश में लोग राजनीतिज्ञों की निजी ज़िंदगी से सरोकार नहीं रखते. वास्तविक स्कैंडल तो वह होता है जो राजनेता खुलेआम करता है. भ्रष्टाचार आजकल निंदनीय कृत्य नहीं है. सब कुछ खुलेआम है. यह दोनों दिशाओं में काम करता है. आज संत होने से आप चुनाव नहीं जीत सकते. न ही किसी की निजी ज़िंदगी पर कीचड़ उछालने से आपको कुछ ज़्यादा राजनीतिक लाभ मिलेगा.

हालिया इतिहास में जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी के बाद सबसे बड़े नाम हैं. उनके ऊपर उस दौर में ऐसे आपत्तिजनक आरोप लगते थे जिसकी कल्पना उस दौर में नहीं की जा सकती थी. उनके विश्वसनीय निजी सचिव एम ओ मथाई ने जनता के बीच कुछ विवादित मुद्दों को नेहरू की मौत के बाद रखा. इन आरोपों और विवादों से जीवित रहते हुए नेहरू कभी विचलित नहीं हुए और न ही उनकी मौत के बाद इन विवादों ने उनकी साख पर कभी सवालिया निशान लगाया. महात्मा गांधी ने भी कभी किसी खोजी प्रवृत्ति के इंसान की ज़रूरत नहीं समझी जो उनके निजी जीवन को जनता के सामने रखता. यह काम गांधी ने ख़ुद ही अपनी जीवनी में

बड़ी ईमानदारी और दक्षता के साथ कर दिया. वह किताब आज़ादी के अठारह साल पहले ही प्रकाशित कर दी गई, और उसे राजनीति से संन्यास लेने के बाद धनार्जन करने के लिए नहीं रखा. किताब में किए ख़ुलासे के बाद भी अंग्रेजी हुकूमत गांधी से उभरते ख़तरे को थामने के लिए कुछ नहीं कर सकी. आख़िर ऐसा क्यों?

हमारे देश में भी लोग गॉसिप में उतनी ही रुचि रखते हैं जितना किसी दूसरे देश में. लेकिन जब वक़्त फ़ैसला करने का हो, तो इन मुद्दों को वे दरकिनार कर देते हैं. वे राजनेता जो चारित्रिक हस्तक्षेप की चुनौतियों को झेल लेते हैं, शिखर तक पहुंच जाते हैं. वहीं चरित्रवान अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में विफल हो जाते हैं, क्योंकि वे राजनीति के खेल की चुनौती में विफल हो जाते हैं.

कश्मीर की जनता को उमर अबदुल्ला से अति शुद्धता नहीं चाहिए, उन्हें तो बस अपने लिए एक बेहतर ज़िंदगी चाहिए. जीवन का मतलब सुरक्षा, बुनियादी सुविधाएं और आत्मसम्मान की सलामती से है. युवा उमर की ईमानदारी और आशावान व्यक्तित्व से काफी उम्मीदें जगी हैं, जो ख़तरनाक भी हैं क्योंकि बड़ी उम्मीदों से ही बड़ी निराशा भी पैदा हो सकती है. इस समय एक चेतावनी भी दे दूं-निराशा राजनीति का स्वाइन फ्लू है. एक और चूक उमर को कभी भी घेर सकती है.

तो क्या उमर अपना संतुलन खो बैठे? राजनीति में फ़ौलादी इरादों का कोई ख़ास लाभ नहीं, लचीले इरादे ज़्यादा फ़ायदेमंद होते हैं. उमर जनवरी से इस पद पर हैं और इसलिए अभी सत्ता संभालने में थोड़ी अनिश्चितता दिखती है. सार्वजनिक जीवन में प्रशासन नेता की अनिश्चितता को तुरंत जनता तक पहुंचा देता है. ऐसे मुद्दों पर भीड़ जुटाने में माहिर नेता किसी भी समय ऐसी सरकार को मुश्किलों में डाल सकते हैं. इससे बचने का कोई गणित नहीं है. अनुभव इसमें एक हद तक ही मदद कर सकता है. युवा नेताओं में वह स्व-महत्व का भाव देखने को मिलता है जो उस कहावत में छुपा है, जिसे राष्ट्रपति ट्रूमैन बार-बार दोहराते थे-द बक स्टाप्स हेयर (पैसा यहीं रुकता है). मेरे पास इससे बेहतर सुझाव है. अगर आप ज़्यादा पलटियां खाते हैं, तो आप फ्लॉप हो जाते हैं.

कश्मीर की राजनीति बेहद प्रासंगिक है. पाकिस्तान इसकी हर हलचल पर नज़र रखता है. उमर और महबूबा मुफ्ती के रूप में जो नई पीढ़ी उभर कर आई है, एक सवाल खड़ा करती है. क्या वे अगली पीढ़ी को सेकुलर, प्रजातांत्रिक और समृद्धि की ओर बढ़ते भारत के साथ भावनात्मक और मानसिक एकीकरण की ओर लेकर जाएंगे या फिर एक बंद गली की ओर? उनकी क्षमता, भाषा और सोच पर बहुत कुछ निर्भर करता है. यह उनकी परंपरा में मिली क़िस्मत से उनकी मुलाक़ात है, वे प्रजातांत्रिक राजनीति की पहली ही बाधा से हार नहीं मान सकते. शहीद बनने के लिए इस्तीफ़ा देना संतों का काम है. शहीदों के लिए मौत ही सबसे अहम है. कश्मीर को तो ऐसा मुख्यमंत्री चाहिए जो ज़िंदगी दे सके.

feedback@chauthiduniya.com

सच की सच्चाई

रवि किशोर

पिछले हफ्ते माननीय उच्च न्यायालय (दिल्ली) ने नैतिकता के पहरेदार बनने के आधार पर दो जनहित याचिकाएं ख़ारिज़ कीं, लेकिन इन फ़ैसलों ने एक बार फिर भारतीय समाज में नैतिकता और उसकी दिशा पर सवाल खड़े कर दिए हैं. उच्च न्यायालय के भारतीय दंड संहिता की धारा 377 पर दिए तथाकथित ऐतिहासिक फ़ैसले-जिसने भारतीय समाज के मूल ढांचे को हिला दिया-के बाद टीवी शो सच का सामना पर आए फ़ैसले के भी व्यापक असर होने वाले हैं. मुख्य न्यायाधीश ए पी शाह और न्यायमूर्ति मनमोहन की खंडपीठ ने जनहित याचिका को ख़ारिज़ करते हुए याचिकाकर्ताओं को केंद्र सरकार के पास गुहार लगाने को कहा. याचिका दायर वाले दोनों लोग सच का सामना के प्रसारण पर रोक लगाना चाहते थे. इस शो के ख़िलाफ़ याचिकाकर्ताओं ने उच्च न्यायालय की शरण इसलिए ली क्योंकि उनके हिसाब से यह शो भारतीय समाज के मूल्यों के ख़िलाफ़ है. याचिकाकर्ताओं के मुताबिक इस शो में प्रतिभागियों से अश्लील सवाल पूछे जाते हैं, जैसे-एक महिला से उसके पति की मौजूदगी में यह पूछा गया कि क्या उन्होंने किसी और से संबंध बनाए हैं? जब उसने नहीं में जवाब दिया तो पॉलीग्राफ ने उसे ग़लत करार दिया. ऐसे कई सवाल रहे हैं जिनमें प्रतिभागियों से यह पूछा गया है कि क्या उनके परिवार के सदस्यों या अपनी बेटी की उमर की लड़कियों से संबंध रहे हैं?

विकास सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता और भारत के पूर्व अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने याचिकाकर्ताओं का पक्ष रखा. उनकी बहस मुख्यत: भारतीय समाज के मूल्यों और संस्कृति पर आधारित थी. उनका मानना था कि ऐसे शो और उसमें पूछे गए सवालों- जो भारतीय संस्कृति और नैतिकता के ख़िलाफ़ हैं- का प्रसारण बच्चों और अपरिपक्व लोगों की सोच को प्रदूषित कर सकता है. ऐसे सवालों और उनके जवाबों से ऐसे कार्यों को मान्यता मिल सकती है जो अनैतिक हैं और बच्चे उन्हें समाज के नैतिक कार्यों की तरह स्वीकार कर सकते हैं. वे यह सोच सकते हैं कि ऐसे कार्य समाज और संस्कृति का हिस्सा हैं और इस तरह इन अनैतिक कार्यों को और बढ़ावा मिल सकता है. अधिवक्ता विकास सिंह ने ज़ोर देकर कहा कि सरकार को काफी समय से लंबित ब्रॉडकास्टिंग रेगुलेशन एक्ट को पारित कराने और ब्रॉडकास्टिंग रेगुलेटरी अथॉरिटी की स्थापना की प्रक्रिया तेज़ करनी होगी. अगर यह एक्ट पारित हो जाता है तो केंद्र सरकार के पास टीवी कार्यक्रमों को रेगुलेट करने की शक्ति होगी.

माननीय उच्च न्यायालय के फ़ैसले और माननीय न्यायालय और न्यायाधीशों का सम्मान करते हुए, मैं इस मुद्दे पर अपनी अलग राय रखना चाहूंगा, ख़ासकर न्यायालय की इस बात से -कि अगर कोई किसी कार्यक्रम की विषयवस्तु से संतुष्ट नहीं है तो वह चैनल बदल सकता है. अगर ऐसा है तो फिर कार्यक्रम की विषयवस्तु को रेगुलेट करने का पूरा मुद्दा ही निरर्थक हो जाता है. प्रसारक किसी भी कार्यक्रम को-बिना उसकी विषयवस्तु के बारे में सोचे- चलाने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होने चाहिए और दर्शक पर छोड़ देना चाहिए कि वह उसे देखे या न देखे. टीवी कार्यक्रमों और सिनेमा के बीच थोड़ा अंतर करना होगा. फिल्म के मामले में अधिकार दर्शक के पास है, क्योंकि वह तय कर सकता है कि किस फिल्म को देखने जाए, लेकिन टीवी के मामले में ऐसा नहीं है. टीवी हमारे लिविंग रूम में पहुंच चुका है और अधिकतर भारतीय घरों में पूरा परिवार एक साथ टीवी देखता है. यहां नैतिकता का आधार यह है कि क्या किसी शो को पूरा परिवार देख सकता है या उसे चैनल बदलने के लिए रिमोट ढूंढना पड़ेगा? अगर चैनल बदलने की ज़रूरत पड़ती है तो फिर ऐसे कार्यक्रम के प्रसारण का क्या मतलब? खुलेपन के इस दौर में जहां चीज़ें आसानी से उपलब्ध हैं. पोर्नोग्रॉफी जैसी विषयवस्तु वाली चीज़ें भी आसानी से सबको मिल जाती हैं और उन्हें रेगुलेट भी नहीं किया जा सकता. ऐसे में कम-से-कम हमारे घर तो इससे बचे रहें. संविधान में दिया गया विचार की स्वतंत्रता का अधिकार भी संपूर्ण नहीं है. सभी नागरिकों को विचारों की स्वतंत्रता का अधिकार देने वाले अनुच्छेद 19ए के तहत राज्य के पास यह अधिकार है कि वह देश की अखंडता और संप्रभुता को ध्यान में रखकर इस स्वतंत्रता को सीमित करने वाला क़ानून बना सकता है. इस तरह हमारे संविधान निर्माताओं ने यह साफ किया था कि विचार और अभिव्यक्ति की आज़ादी को सीमित किया जा सकता है, अगर वह

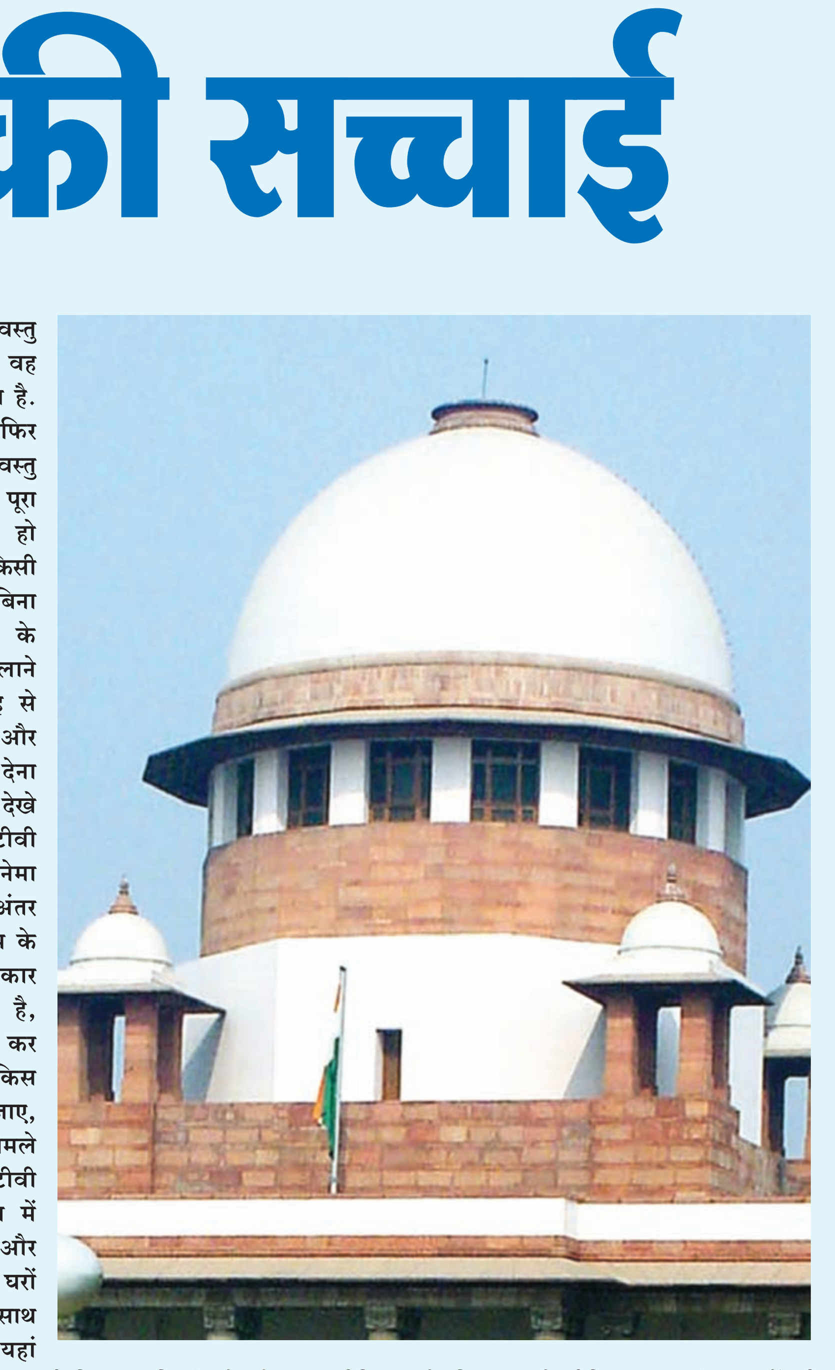

नैतिकता के ख़िलाफ़ हो. नैतिकता भारतीय मूल्यों और संस्कृति के आधार पर तय होनी चाहिए न कि आयातित पाश्चात्य तौर-तरीक़ों पर. सच का सामना जैसे कार्यक्रम प्राय: पाश्चात्य कार्यक्रमों की नक़ल हैं (सच का सामना, द मॉमेंट ऑफ ट्रूथ पर आधारित है.)

अब सवाल यह उठता है कि जब कोई सच बोल रहा हो तो किसी को क्या आपत्ति होनी चाहिए? क्या पुरस्कार में पैसे देने वाले टीवी शो ही ऐसे सच के ख़ुलासों के लिए उपयुक्त मंच हैं जबकि ऐसे सच अधिकांशत: निजी हैं और बाक़ियों की इसमें रुचि की वजह महज़ इनका सनसनीखेज होना है. अगर ये प्रतिभागी सच के लिए प्रतिबद्ध हैं तो इन्हें पैसों के बदले सच बताने के बजाय पहले अपने परिवार को सच बताने का साहस दिखाना चाहिए. लेकिन इन प्रतिभागियों ने इस तथाकथित सच को सालों से अपने परिवार और नज़दीकी लोगों से छिपा कर रखा और अब ये अचानक कैमरे की चकाचौंध में पैसों के बदले सच बताने को तैयार हैं. क्या यह महज़ टीआरपी के लिए मुद्दे को सनसनीखेज बनाना नहीं है?

मीडिया की विषयवस्तु को रेगुलेट करने की ज़रूरत है, जैसा कि सेंसर बोर्ड फिल्मों के मामले में करता है. यह सबसे अच्छी बात होगी, अगर सभी मीडिया घराने साथ आएं और और ख़ुद को रेगुलेट करने के लिए दिशा-निर्देश तय करें. ऐसे दिशा-निर्देश जो मीडिया के हित में तो हो ही, साथ में नैतिकता और जनहित जैसे मुद्दे भी इसकी जद में हों. दुर्भाग्य से वर्तमान मीडिया टीआरपी के मोहपाश में फंसा है. ऐसा लगता है कि मीडिया विषय के बारे में नहीं, केवल टीआरपी के बारे में सोचता है. जिस दिन टीआरपी आती है, आप मीडियाकर्मियों को उसे बांटते और अगर उनका चैनल ऊपर जाए तो अपनी पीठ थपथपाते पाएंगे. लेकिन बहुतों के लिए टीआरपी एक अनदेखे भूत की तरह है. टीआरपी के पूरे सिद्धांत को पारदर्शी बनाए जाने की ज़रूरत है और बेहतर होगा कि मीडिया घरानों की बनाई किसी स्वतंत्र संस्था के हाथ में इसका नियंत्रण हो. मैं मीडिया को दोषी नहीं ठहराता, क्योंकि किसी भी चैनल की कमाई टीआरपी पर निर्भर करती है. इसके बावजूद, मीडिया को पूरे तौर पर किसी व्यावसायिक संस्था की तरह काम नहीं करना चाहिए. समाज में इसकी बहुत अहम भूमिका है. वह अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता. अभी एक चैनल पर ऐसा कार्यक्रम आ रहा था जिसमें एक अभिनेत्री अपना स्वयंवर रचा रही थी. क्या होगा अगर वह अभिनेत्री शो में चुने गए लड़के से किसी वजह से शादी न करे? क्या यह दर्शकों को बेवकूफ बनाना नहीं होगा? क्या उस चैनल के लोग और कार्यक्रम का प्रोड्यूसर लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं है? मैं मीडिया के पुरोधाओं से आशा करता हूं कि वे इसका जवाब दे पाएंगे. ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जब ख़बरों को इस हद तक सनसनीखेज बनाया गया कि लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंची. सच का सामना का मामला संसद में सभी पार्टियों के लोगों ने उठाया है और इस पर प्रतिबंध की मांग की है. हालांकि यहां भी स्थिति थोड़ी अजीब है, जहां एक तरफ़ ये लोग ऐसे कार्यक्रमों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की मांग कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ़ ब्रॉडकास्टिंग बिल कई सालों से लंबित है. सांसदों को इस मौके पर आगे आना चाहिए और इस बिल में सुझावों और आपत्तियों के अनुसार बदलाव कर इसे पारित करने की प्रक्रिया में तेज़ी लानी चाहिए. अंत में, सच के इस पूरे मामले पर मैं महात्मा गांधी को याद करना चाहूंगा. उन्होंने कहा था कि सच एक पवित्र और पावन गुण है और इसे पाने के तरीक़े भी पवित्र और पावन होने चाहिए. सच के रास्ते पर तप और कष्ट, यहां तक कि मृत्यु भी है. इसमें लेश मात्र भी स्वार्थ नहीं होना चाहिए. गांधीजी का कहना था-हम रामायण पढ़कर राम को, गीता पढ़कर कृष्ण को, क़ुरान पढ़कर अल्लाह को या बाइबल पढ़कर क्राइस्ट को नहीं समझ सकते. उन्हें समझने का एकमात्र रास्ता उच्च और पवित्र चरित्र विकसित करना है. चरित्र हमारे कार्यों पर निर्भर हैं और ये कार्य सत्य पर आधारित हैं. इस तरह सत्य हर अच्छी और महान चीज़ का स्रोत और आधार है. सत्य को केवल अभ्यास और वैराग्य से ही हासिल किया जा सकता है. *(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)*

feedback@chauthiduniya.com

संपादक महोदय

आपके अख़बार में बलूचिस्तान की ख़बर बहुत अच्छी लगी. साथ ही श्याम सरन जी का लेख *काराकोरम दे सकता है आतंकवाद से निजात* अपने आप में पूर्ण लगा. शायद यह सही ही है कि काराकरोम के पहाड़ अपनी पूरी आभा के साथ मौजूद हैं, तभी तो हम आतंकवाद को ख़त्म करने की बात करते हैं. भारत ने तो इस मामले में बढ़त बना ली है. यह जानकर बहुत अच्छा लगा कि आज काराकोरम की पहाड़ियों में इतनी जान है कि वह आतंकवाद से निजात दिला सकती है. वैसे तो काराकोरम सामुदायिक स्तर पर एक पहेली की तरह है. अगर आतंकवाद इस तरीक़े से ख़त्म हो सकता है तो हमें जल्द ही यह क़दम उठाना चाहिए. बुंदेलखंड वाला आलेख भी अच्छा था. सही कहा गया है कि बुंदलेखंड की नृत्यकला कहीं लुप्त ही होती जा रही है.

आपका
मोहित
इस्लामगंज
झांसी.

संपादक महोदय,

आपका साप्ताहिक अख़बार *चौथी दुनिया* पहली देखा. बहुत अच्छा लगा. बहुत सुंदर अख़बार है. मेरी रुचि कार्टून बनाना है, इसलिए सबसे पहली नज़र तो आपके अख़बार में छपे कार्टून पर पड़ी. सामयिक मुद्दों पर बने कार्टून बहुत ही अर्थपूर्ण हैं. कम जगह में ही कितनी महत्वपूर्ण बातें इशारे से कह दी गई हैं. यही कार्टूनिस्ट की महानता है. दूसरी बात यह कि अख़बार की प्रतियां स्टॉल पर उतनी नहीं दिखीं जितनी अन्य अख़बारों की होती हैं. कभी-कभी खोजने को मज़बूर हो जाती हूं, फिर भी अख़बार मिलता नहीं. ज़रा इस बात पर ध्यान दें.

आपकी
प्रियंका
प्रीत विहार

जब तोप मुक़ाबिल हो
कांग्रेस का नया मुस्लिम नेतृत्व

कांग्रेस हाई कमान, जिसे पहले सोनिया गांधी के नाम से जाना जाता था और अब उसमें राहुल गांधी का नाम जुड़ गया है, चाहता था कि वह उत्तर भारत के लिए एक ऐसा नाम तलाशे जो मुस्लिम नेतृत्व की कमी को दूर करने में सक्षम हो. कांग्रेस के पास उत्तर भारत में केवल गुलाम नबी आज़ाद और सलमान ख़ुर्शीद के नाम थे

इस बार यह देखना दिलचस्प होगा कि कांग्रेस ने अगस्त महीने की शुरुआत में क्या काम किया, या कहें कि जो फ़ैसला लिया उसका परिणाम क्या निकलेगा. कांग्रेस ने, विशेषकर सोनिया गांधी के उस फ़ैसले से हमारा मतलब है जिसका दूरगामी असर मुसलमानों की सियासत पर पड़ने वाला है.

अगस्त में दिल्ली से राज्यसभा के लिए चुनाव होने वाला था, क्योंकि दिल्ली से राज्यसभा सदस्य जयप्रकाश अग्रवाल लोकसभा का चुनाव जीत चुके थे. हर वह व्यक्ति कांग्रेस का प्रत्याशी होना चाहता था जो या तो चुनावों में हार चुका था या जिसे टिकट नहीं मिला था. जगदीश टाइटलर भी उनमें से एक थे तथा बिहार से लोकसभा का चुनाव हारे भूतपूर्व गृह राज्य मंत्री और कांग्रेस प्रवक्ता शकील अहमद दिल्ली से राज्यसभा के लिए सशक्त दावेदार थे. शीला दीक्षित और अहमद पटेल के यहां उम्मीदवारों के समर्थक और विरोधी दबाव डाल रहे थे. अख़बारों में नाम छपने शुरू हो गए, और इसमें उनका ग़म भी छपने लगा जो राज्यसभा में जाना ही नहीं चाहते थे, डॉ. मंज़ूर आलम का ऐसा ही नाम था. दरअसल यह एक रणनीति थी कि नाम छप जाने पर उन्हें टिकट मिलेगा ही नहीं. एक सशक्त लॉबी ने महमूद पराचा का नाम सोनिया गांधी के यहां पहुंचाया तथा एक बार लगने लगा कि उन्हें कांग्रेस का टिकट मिल जाएगा. दिल्ली अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष कमाल फारूखी के समर्थक भी शीला दीक्षित और अहमद पटेल के यहां दबाव डालने लगे. दरअसल हुआ यह कि जुलाई के आख़िरी हफ़्ते में कांग्रेस ने दिमाग़ बनाया कि उसे किसी अल्पसंख्यक को दिल्ली से राज्यसभा में भेजना है, तथा यह बात कांग्रेस नेताओं को लीक कर दी गई. सिख नेता परमजीत सरना के लिए सिखों ने दबाव बनाना शुरू किया.

कांग्रेस हाई कमान, जिसे पहले सोनिया गांधी के नाम से जाना जाता था और अब उसमें राहुल गांधी का नाम जुड़ गया है, चाहता था कि वह उत्तर भारत के लिए एक ऐसा नाम तलाशे जो मुस्लिम नेतृत्व की कमी को दूर करने में सक्षम हो. कांग्रेस के पास उत्तर भारत में केवल गुलाम नबी आज़ाद और सलमान ख़ुर्शीद के नाम थे जिन्हें वह मुस्लिम चेहरे के रूप में मुसलमानों के सामने रखती थी. बाक़ी नेता या तो उम्र गुज़ार चुके हैं या कांग्रेस ख़ुद उन्हें ज़िम्मेवारी के लायक नहीं समझती. यहां हाई कमान ने एक सधी चाल चली कि उसने इशारा किया कि दिल्ली का रहने वाला मुसलमान ही राज्यसभा में जाएगा. यह सलाह हाई कमान को अहमद पटेल ने दी थी, कि इससे पार्टी के भीतर मुस्लिम नेतृत्व के योग्य संभावित नाम आ जाएंगे. नाम आए ज़रूर, पर वे नाम आए जिनमें पार्टी का नेतृत्व करने की क्षमता कम, अपना महत्व बताने का दंभ ज़्यादा था. अहमद पटेल ने हाई कमान को कोई नाम नहीं दिया जबकि मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने एक नाम सोनिया गांधी के यहां भेजा.

उनतीस और तीस जुलाई की रात दिल्ली की सीट के लिए 10

अब परवेज़ हाशमी पर बात शुरू हुई तो किसी ने उनके नाम का विरोध नहीं किया, करता भी कौन, क्योंकि उनका नाम ख़ुद सर्वोच्च व्यक्ति की ओर से आया था. पिछले सालों में, जब परवेज़ हाशमी शीला दीक्षित मंत्रिमंडल से हटे थे तो उन्हें ख़ुद कांग्रेस अध्यक्ष ने अपनी टीम में सचिव के रूप में शामिल किया था. इसके बाद परवेज़ हाशमी को दिग्विजय सिंह के साथ उत्तर प्रदेश कांग्रेस का भार सौंपा.

जनपथ में माथापच्ची शुरू हुई. कांग्रेस के तीन महामंत्री कांग्रेस के अध्यक्ष के साथ बैठे. एक महामंत्री ख़ामोश था, दूसरा लगातार कुछ सोच रहा था तथा तीसरा नामों को पढ़ता और काट रहा था. सबसे अंत में नाम शकील अहमद का बचा. अचानक कांग्रेस अध्यक्ष ने कहा कि परवेज़ हाशमी को क्यों न राज्यसभा में भेजा जाए. सभी कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी को देखने लगे.

अब परवेज़ हाशमी पर बात शुरू हुई तो किसी ने उनके नाम का विरोध नहीं किया, करता भी कौन, क्योंकि उनका नाम ख़ुद सर्वोच्च व्यक्ति की ओर से आया था. पिछले सालों में, जब परवेज़ हाशमी शीला दीक्षित मंत्रिमंडल से हटे थे तो उन्हें ख़ुद कांग्रेस अध्यक्ष ने अपनी टीम में सचिव के रूप में शामिल किया था. इसके बाद परवेज़ हाशमी को दिग्विजय सिंह के साथ उत्तर प्रदेश कांग्रेस का भार सौंपा. बिहार कांग्रेस का ज़िम्मा भी उन्हें दिया गया. असम के चुनाव तथा जम्मू-कश्मीर के चुनावों में उन्हें दिग्विजय सिंह के साथ ख़ुद कांग्रेस अध्यक्ष ने भेजा. सभी जगह कांग्रेस को सफलता मिली. दिग्विजय सिंह ने हमेशा सोनिया गांधी से परवेज़ हाशमी की तारीफ़ की. शायद सोनिया गांधी की नज़र भी परवेज़ हाशमी पर थी. इसीलिए उन्होंने जिस अंदाज़ में परवेज़ हाशमी का नाम लिया, वह फ़ैसला लेने वाला अंदाज़ था. शायद इसमें परवेज़ हाशमी की विधानसभा चुनावों में चौथी बार जीत भी एक बड़ा कारण बनी और बाटला हाउस कांड के बाद उनका जीतना सोनिया गांधी पर यह असर डाल गया कि मुसलमान कांग्रेस पर भरोसा करते हैं, सोनिया गांधी ने इसे परवेज़ हाशमी की व्यक्तिगत कुशलता के रूप में लिया. परवेज़ हाशमी को लाने का मतलब कांग्रेस पार्टी द्वारा एक नए मुस्लिम नेता की राष्ट्रीय स्तर पर स्थापना है. गुलाम नबी आज़ाद और सलमान ख़ुर्शीद सरकार में हैं और कांग्रेस को महाराष्ट्र में, उसके बाद झारखंड में तथा हरियाणा और बिहार में चुनावों का सामना करना है. इन जगहों पर मुसलमानों का वोट बहुत सी सोटों पर फ़ैसला करने वाला है. कांग्रेस के लिए मुस्लिम वोट को जीतना और अपने पक्ष में करना अत्यंत आवश्यक है और साथ ही उसे इस तरह करना है कि हिंदू वोट नाराज़ न हो. परवेज़ हाशमी का चुनाव शायद इसीलिए किया गया है कि वह उन चंद मुस्लिम नेताओं में हैं जिन्हें हिंदू भी अपने क़रीब मानते हैं. सोनिया गांधी परवेज़ हाशमी की इसी क़ाबिलियत का इस्तेमाल करना चाहती होंगी.

लेकिन कांग्रेस में एक बीमारी बहुत पुरानी है. यहां साथ देने की जगह टांग खींचना ज़्यादा पवित्र माना जाता है. कांग्रेस और परवेज़ हाशमी का इम्तहान भी यही है कि कैसे वे इस बीमारी का सामना करते हैं और कैसे उन मुसलमानों को कांग्रेस के साथ लाते हैं जो कांग्रेस से दूर चले गए हैं. अगर परवेज़ इस इम्तहान में सफल हो गए तो कांग्रेस को, विशेषकर सोनिया गांधी, राहुल गांधी और अहमद पटेल को यह श्रेय जाएगा कि उन्होंने देश को एक सेकुलर मुस्लिम नेता दे दिया है.

संपादक

editor.chauthiduniya.com

ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी हैं क़ुरानशरीफ़

धरती पर इस समय रह रहे 6.7 अरब पुरुष, महिला और बच्चों में हर चौथा आदमी यही कहता है कि अल्लाह के अलावा कोई ख़ुदा नहीं है और मोहम्मद उनके पैगम्बर हैं. इसमें य़कीन करना उन्हें मुसलमान बनाता है- जो अपनी मर्ज़ी से अपने ख़ुदा के प्रति समर्पित हैं.

सभी मुसलमान य़कीन करते हैं कि क़ुरान में लिखा उनके ख़ुदा के अल्फाज़ हैं-जिसे जहां में बतौर आख़िरी सच्चाई पैगम्बर के हाथों भेजा गया है. यह सच्चाई पैगम्बर साहब को तेईस सालों में बताई गई, जिस वक़्त उनकी उम्र लगभग चालीस साल की थी. लेकिन आज महज़ बीस फ़ीसदी मुसलमानों के पास वह किताब है जो उनके दिल के बेहद क़रीब है और उनके य़कीन की बुनियाद है. ऐसा संपूर्ण इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ. यह भी संभावना है कि मुस्लिम जगत को परिभाषित करने वाली कई समस्याओं का हल इसी किताब में हो. आज पाक क़ुरान सीधे तौर पर पढ़ने के लिए नहीं मिलती और क़ुरान पढ़ने के लिए दी जाने वाली ट्रेनिंग-क़ुरान के अनुवाद को भी पढ़ने के लिए अहम- की भी अहमियत कम हो गई है. यह ख़ास तौर पर उनके लिए एकदम सही है जिनकी पढ़ाई-लिखाई आधुनिक स्कूलों में पश्चिमी पाठ्यक्रम के तहत हुई है.

क़ुरान वास्तव में एक छोटा संकलन है. इसमें लगभग 86,430 शब्द हैं, जिन्हें 6214 आयतों में पिरोया गया है और फिर उसे 114 खंडों में बांटा गया है. सबसे छोटे खंड में महज़ तीन आयतें हैं, वहीं सबसे बड़े खंड में 286 आयतें हैं. मुसलमान यक़ीन करते हैं कि क़ुरान को दूसरे शब्दों में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता, उसका उद्घाटन एक निश्चित जगह और समय पर हुआ है.

अपने सबसे अहम यक़ीन के आध्यात्मिक और लिखित पहलू से मुस्लिम समाज अपने इतिहास में पहली बार इतना दूर हुआ है. बारहवीं शताब्दी के मध्य तक मुस्लिम समाज के पढ़े-लिखे वर्ग को कम से कम अरबी की कामचलाऊ जानकारी होती थी. इतना बड़ा बदलाव हालिया मुस्लिम समाज का औपनिवेशिक युग में बड़ी तेज़ी से हुए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक परिवर्तन के चलते हुआ. इनमें सबसे अहम परिवर्तन मुस्लिम शिक्षा पद्धति की जगह पश्चिमी शिक्षा पद्धति का इस्तेमाल रहा, जिसे आमतौर पर बाहर से लाकर शासकों द्वारा प्राय: मुस्लिम समाज पर जबरन थोपा गया. यह नई शिक्षा पद्धति अपने साथ समाज के लिए नया स्वरूप, संचार का नया माध्यम, स्तर और नए लक्ष्य को साथ लेकर आया.

पुरानी शिक्षा प्रणाली और शिक्षण संस्थानों को ख़त्म करने के पीछे अहम वजह सोशल इंजीनियरिंग थी, जिसके चलते पारंपरिक समाज का विघटन हुआ और उसकी जगह नई राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली परंपरागत इस्लामिक धरती पर थोप दी गई. इस रैडिकल और ख़तरनाक परिवर्तन, जिसने आज के मुस्लिम जगत को तैयार किया, ने मुसलमानों को उनके आध्यात्मिक और परंपरागत ज्ञान से दूर करते हुए उनके यक़ीन और प्रैक्टिस को अलग-थलग कर दिया.

नतीजतन पाई गई धार्मिक निरक्षरता ने समाज में भ्रम और अव्यवस्था को जन्म दिया. इसका असर मज़हबी यक़ीन और पद्धतियों पर पड़ा. सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में खंडित मानसिकता और राजनीतिक व सामाजिक अस्थिरता के साथ-साथ दर-ए-इस्लाम के इलाक़ों में हिंसा को बढ़ावा दिया. मुसलमानों के बीच पनप रही क़ुरान की निरक्षरता के बावजूद वह मुसलमानों के यक़ीन का सबसे अहम श्रोत है, जिसे चैलेंज नहीं किया जा सकता.

क़ुरान वास्तव में एक छोटा संकलन है. इसमें लगभग 86,430 शब्द हैं, जिन्हें 6214 आयतों में पिरोया गया है और फिर उसे 114 खंडों में बांटा गया है. सबसे छोटे खंड में महज़ तीन आयतें हैं, वहीं सबसे बड़े खंड में 286 आयतें हैं. मुसलमान

यक़ीन करते हैं कि क़ुरान को दूसरे शब्दों में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता, उसका उद्घाटन एक निश्चित जगह और समय पर हुआ है. हालांकि वह इतिहास और भौगोलिक सीमाओं के परे है. अल्लाह के पास सुरक्षित (लौह-अल-महफ़ूज़) क़ुरान जब हज़रत साहब के मार्फत उद्घाटित हुआ, तो वह एक पवित्र समय था, और उतरने के पवित्र समय को ध्यान में रखा गया था. वह कोई बचकाना इतिहास का क्षण नहीं था, जो एक घटना से दूसरी घटना तक जाता है. क़ुरानशरीफ़ इसी वजह से एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है, जो एक पवित्र क्षण में उद्घाटित हुआ. यह एक ऐसी घटना थी, जिसने उसी दौरान उद्घाटनों के उस चक्र को गति दे दी, जो पहले नर यानी आदम को दिए गए दिव्य उद्घाटन से शुरू हुआ था.

क़ुरान इस बात को कहता है कि ख़ुदा ने इंसानों को क़ुरान ज़ाहिर करने के लिए ख़ुद ही शुद्ध अरबी भाषा (अरबियन मुबीन) तय की. मानवों की बोली जाने वाली भाषा में ज़ाहिर किए जाने के बावज़ूद क़ुरानशरीफ़ ने न तो ख़ुद का इस्लाम से पहले पैदा हुए कवियों के नज़्म (अरबी काव्य) और न ही कथा (साज़) के मज़मून से ताल्लुक रखा. इसके उलट यह अपना ख़ास अंदाज़ लेकर आया, इसने ज़रूरी कथ्यों और सत्यों पर ध्यान दिया, दिव्य ज्ञान से ज़मानी ताल्लुकात को जोड़ा और मानवों के बीच मोहब्बत का एहतमाम किया. ज़ुबान के साथ इस अनोखे धार्मिक रवैए को अरबी के मूल के साथ जोड़ कर क़ुरानशरीफ़ के कथ्य में किसी भी घालमेल की संभावना को ही ख़ारिज़ कर दिया गया, जो किसी भी ज़ुबान में वक़्त के साथ आ ही जाता है.

आज क़ुरान मुसलमानों की ज़िंदगी के हर पहलू में एक अहम हिस्सा है, सैकड़ों मुसलमान आज क़ुरान के अनेक अनुवाद, विश्लेषण और शब्दकोष की ओर रुख़ करते हैं जिसकी मदद से वह पाक क़ुरान से गहन रिश्ता क़ायम कर सकें. क़ुरान के यह स्रोत कुछ हद तक तो मददगार होते हैं लेकिन इन पुराने लेखों को बिना मदद के समझने का प्रावधान नहीं था, कई पढ़ने वाले तो इसके वास्तविक मायने से दूर हो गए.

एम. इक़बाल

(लेखक पाकिस्तान के मशहूर स्तंभकार हैं)

feedback@chauthiduniya.com

ख़ुफ़िया एजेंसियों के सीक्रेट

कम फिल्मी नहीं होती एफबीआई की असली कहानियां

हाल में ही एक फिल्मी वेबसाइट पर अमेरिकी संघीय जांच एजेंसी यानी एफबीआई से जुड़ी सात सर्वश्रेष्ठ फिल्मों की एक सूची आई है. इस सूची में *द किंगडम, कैच मी इफ यू कैन, द एक्स फाइल्स* जैसी फिल्में हैं. इसमें कोई शक़ नहीं कि एफबीआई ने हॉलीवुड केफिल्मकारों को हमेशा ही आकर्षित किया है. एफबीआई की पड़ताल की सच्ची घटनाओं पर भी कई फिल्में बन चुकी हैं. दरअसल एफबीआई की जांच और मुज़रिमों को पकड़ने की कहानियां भी हॉलीवुड की किसी कहानी से अलग नहीं है. एफबीआई की कहानी के इस पड़ाव पर एक नज़र उसके उन मामलों पर जो ज़ुर्म की दुनिया में तो मशहूर हुए ही, उन्होंने पर्दे पर भी धमाल मचाया.

पावस नीर

अमेरिकी शहरों में 1970 के दशक में अंडरवर्ल्ड अपनी जड़ें दोबारा जमाने की कोशिश में जुटा था. अल-कैपोने और लकी लुसियानो जैसे माफियाओं को एफबीआई के हाथों मात मिलने के क़रीबन एक पीढ़ी बाद अमेरिका के कई शहरों में माफियासो का प्रभाव फैल रहा था. अमेरिकी संघीय जांच एजेंसी उर्फ़ एफबीआई, जिसके शब्दकोश में माफिया संगठित अपराध के नाम से दर्ज़ थे, इन पर लगाम कसने के लिए अपनी योजनाएं बनाने में जुटी थी. इस बीच न्यूयार्क शहर पांच बड़े माफिया परिवारों के बीच बंट चुका था. बोनानो, गैंबिनो, कोलंबो, जेनोवीज और लुचिसी परिवारों के अपने-अपने गैंग स्थापित हो चुके थे और इनके बीच ही शहर के सबसे कमाऊ धंधे यानी संगठित अपराध का साम्राज्य फैल रहा था.

इसी बीच काम की तलाश में भटक रहा एक पुराना ज्वेल थीफ डॉनी ब्रास्को न्यूयार्क की गलियां छान रहा था. उसकी मुलाक़ात यहां के सबसे बड़े माफिया परिवार बोनानो के एक छुटभैये गैंगस्टर बेन रेगियेरो से हुई. बेन लेफ्टी रेगियेरो की अपनी ज़िंदगी मुश्किल में थी और उसे डॉनी में एक अच्छा दोस्त मिल गया. उधर काम की तलाश में भटक रहा डॉनी, लेफ्टी के काम में उसका हाथ बंटाने लगा और इस तरह संगठित अपराध की दुनिया में उसका पहला क़दम पड़ा. लेफ्टी की दोस्ती से उसने यह काम जल्द ही सीख लिया और बोनानो परिवार में एसोसिएट (माफिया में सबसे निचला रैंक) बन गया. उसके काम करने के शानदार तरीक़े से बोनानो परिवार का बॉस डॉमिनिक सॉनी ब्लैक नेपोलटियानो के भी क़रीब आ चुका था. बोनानो परिवार के हर ज़ुर्म में वह साथ देता रहा. हां, पूरे परिवार में यह बात भी सबको पता थी कि डॉनी ब्रास्को में किसी का क़त्ल करने की हिम्मत नहीं थी. शायद यही वजह थी कि डॉनी ब्रास्को को एसोसिएट के आगे कोई तरक़्क़ी नहीं मिली थी.

डॉनी को बोनानो का हिस्सा बने कई साल बीत चुके थे और अब उसे बॉस नेपोलटियानो के सबसे प्यारे और विश्वस्त सिपाहियों में गिना जाने लगा था. हां, सवाल यह था कि कब डॉनी ज़ुर्म की अगली सीढ़ी चढ़ेगा. आख़िरकार, नेपोलटियानो ने डॉनी को एक काम सौंपा जिससे वह अभी तक इंकार करता रहा था. डॉनी को लेफ्टी के साथ एक विरोधी-एंजेलो- को ख़त्म करने का काम सौंपा गया. लेकिन ऐन मौके पर डॉनी ब्रास्को ग़ायब हो गया. ख़ैर, एंजेलो को उसी दिन मौत के घाट उतारा गया. लेकिन अगले दिन नेपोलटियानो और लेफ्टी रेगियरो को ख़बर मिली कि उनका पुराना दोस्त और एसोसिएट डॉनी ब्रासो दरअसल अपने पुराने और असली मालिक के पास लौट चुका था. उसका पुराना दफ़्तर न्यूयार्क की उस इमारत में था जिससे न्यूयार्क के माफिया सबसे ज़्यादा ख़ौफ़ खाते थे. नेपोलटियानो और रेगियेरो को यह जानकर बड़ा झटका लगा कि डॉनी ब्रासो दरअसल एक एफबीआई एजेंट था. उसका असली नाम था-जोसेफ डी पिस्टोने. अगले कुछ दिनों में यह ज़ाहिर हो गया कि अमेरिकी संगठित अपराध में एफबीआई ने इतिहास की सबसे बड़ी सेंधमारी कर दी थी. डॉनी ब्रासो उर्फ जोसेफ डी पिस्टोने के लाए सबूतों और उसकी इकट्ठा की गई जानकारी से एफबीआई ने 200 से अधिक लोग गिरफ्तार किए और 100 से भी अधिक लोगों को सज़ा हुई. अमेरिकी माफिया को एक बड़ा झटका लग गया था और इसकी गूंज डॉनी के साथियों को भी सुनाई दी. कुछ दिनों बाद डॉमिनिक नेपोलटियानो अपने घर में मृत पाया गया. उसके दोनों हाथ काट दिए गए थे. उसकी हत्या माफिया ने ही की थी, और उसका ज़ुर्म था-एक गद्दार को अपनी गैंग में जगह देना. रेगियेरो को भी मौत की सज़ा दी गई, लेकिन उसे कुछ हो उससे पहले ही एफबीआई ने उसे अपनी हिरासत में रख लिया.

डॉनी ब्रास्को उर्फ़ जोसेफ डी पिस्टोने

एफबीआई के सबसे कामयाब घुसपैठिए पर भी इस मिशन के छींटे पड़े. जोसेफ डी पिस्टोने के ऊपर माफिया ने-ज़िंदा या मुर्दा-500 हज़ार डॉलर का इनाम रखा. बाद में एफबीआई और माफिया की आपसी बातचीत पर यह इनाम तो हटा लिया गया, लेकिन उसके बाद से आज तक न्यूजर्सी और अटलांटिक जैसे माफिया प्रभुत्व वाले इलाक़ों में जोसेफ पिस्टोने ने क़दम नहीं रखा है. वह अभी भी ख़ुफ़िया तरीक़े से नाम बदलकर यात्रा करते हैं. माफिया को सबसे बड़ी चोट पहुंचाने वाले को आज भी ज़िंदगी छुपकर बितानी पड़ रही है. हालांकि पिस्टोने या यूं कहें डॉनी ब्रास्को की इस कहानी में हॉलीवुड को एक शानदार फिल्म का हर मसाला नज़र आया. 1997 में जोसेफ पिस्टोने की कहानी पर फिल्म आई-डॉनी ब्रास्को. इस फिल्म में डॉनी का किरदार अभिनेता जॉनी डेप ने निभाया और बेन रेगियेरो का किरदार निभा रहे थे अल पचीनो. नेपोलटियानो की भूमिका माइकल मेडसन ने निभाई. डॉनी ब्रास्को की कमाई 12 करोड़ 49 लाख 9 हज़ार 763 डॉलर यानी क़रीबन 600 करोड़ रुपये रही.

कहते हैं कि सच किसी कहानी से ज़्यादा रोचक होता है. एफबीआई की कहानी में भी ऐसे रोचक और रोमांचक सच्चाइयों की कोई कमी नहीं है. एक परत पर नज़र डालें तो उसके नीचे कई और परतें खुल जाती हैं. ऐसी ही किसी परत से बनती है फिर एक नई कहानी, रूपहले पर्दे पर एक नई फिल्म उभरती है- हो भी क्यों न, आख़िर किसी भी लेखक की कल्पना से ज़्यादा रोचक है एफबीआई की सच्ची दास्तां.

एफबीआई ड्रामाज डॉट कॉम के हिसाब से सात सर्वश्रेष्ठ एफबीआई फिल्में

द एक्स फाइल्स-एलियंस और अजीब वैज्ञानिक प्रयोग, और उसके मतलब समझने की कोशिश करते दो एफबीआई एजेंट.

कल्पना की ऊंचाई और रोमांच की हद को छूती है यह फिल्म.

फेस/ऑफ-क्या करेंगे अगर आपका चेहरा ही बदल जाए. एक एफबीआई एजेंट सबसे बड़े अपराधी को पकड़ने के लिए

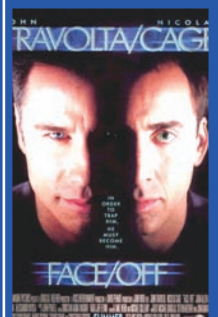

उसका चेहरा अपनाता है तो अपराधी उस एजेंट का ही चेहरा चुरा लेता है.

मिसिसिपी बर्निंग-अमेरिकी नागरिक अधिकार आंदोलन के दौरान हुई हत्याओं की एफबीआई के दो एजेंटों

द्वारा जांच की सच्ची घटना पर आधारित यह फिल्म विवादास्पद भी रही और सफल भी.

द पनीशर-इस फिल्म में एफबीआई का दूसरा चेहरा नज़र आता है. जहां किसी की मदद न

मिलने से एक एफबीआई अधिकारी माफिया के ख़िलाफ़ सज़ा सुनाने वाला बन जाता है.

द किंगडम- यह फिल्म सऊदी अरब में अमेरिकी सैन्य अड्डे पर हमले के बाद एक एफबीआई टीम के दोषियों को पकड़ने की

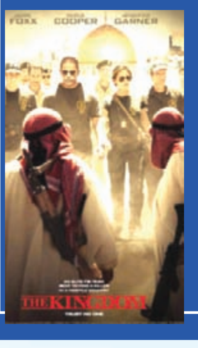

ज़ोरदार कहानी है. इसका सबसे ख़ूबसूरत पहलू एफबीआई टीम के मुखिया और एक सऊदी जांच अधिकारी के बीच की दोस्ती है.

हनीबल-सीरियल किलर हनीबल लेक्टर की कहानी के इस दूसरे भाग में उसके और एक महिला एफबीआई एजेंट के रिश्ते के पहलुओं को दिखाया गया है.

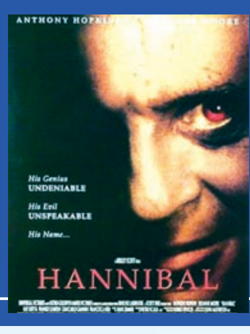

कैच मी इफ यू कैन-फ्रैंक एबेनगेल जूनियर नाम के हाई-प्रोफाइल ठग और उसे पकड़ने में जुटे एक एफबीआई एजेंट की सच्ची कहानी पर आधारित

इस फिल्म से लियोनार्डो डी कैप्रियो और टॉम हैंक्स जैसे कलाकार और स्टीफन स्पीलबर्ग जैसा निर्देशक जुड़ा था.

pawas@chauthiduniya.com

ज़रा हट के

गीत सुनाएगी गंजी बुलबुल

बुलबुल के परिवार में एक और इजाफ़ा हुआ है. पक्षी वैज्ञानिकों ने गाने वाली चिड़िया, सॉन्गबर्ड या बुलबुल की एक नई प्रजाति का पता लगाया है. उनके मुताबिक पिछले सौ साल में पहली बार इस प्रजाति की चिड़िया मिली है. बुलबुल की यह नई बहन लाओस में खोजी गई है.

खोजी गई इस चिड़िया का नाम रखा गया है- बेयर फेस्ड बुलबुल. ऐसा इसलिए है कि इसके सिर पर बाल नहीं के बराबर हैं, सिर्फ़ बालनुमा पंखों की एक पतली सी कतार है. इसका मुंह भी अनोखा है. इस पर पंख नहीं हैं और इसका रंग हल्का गुलाबी है. आंखों के पास उसकी त्वचा हल्के नीले रंग की है. वाइल्ड लाइफ़ कंजरवेशन सोसायटी ने इस खोज के बारे में बताते हुए कहा कि इस सुंदर और नन्हीं सी चिड़िया के सिर पर बहुत कम बाल हैं. इसे मज़ाक में गंजी चिड़िया (बाल्ड सॉन्गबर्ड) भी कहा जा रहा है. ये सोसायटी न्यूयॉर्क के ब्रांक्स चिड़ियाघर और दूसरे शहरी वन्य जीव पार्कों की देखरेख का काम करती है. सोसायटी के वैज्ञानिकों और ऑस्ट्रेलिया की मेलबोर्न यूनिवर्सिटी ने इस चिड़िया की पहचान बुलबुल की नई प्रजाति के रूप में की है. वैज्ञानिकों ने अपनी रिसर्च फोर्कटेल नाम की विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित की थी. उनके मुताबिक दक्षिण पूर्वी एशियाई देश लाओस के सावनाखत प्रांत में चूने की चट्टानों (लाइमस्टोन) की क़ुदरती गुफाओं में पिछले साल यह चिड़िया देखी गई थी.

वैज्ञानिकों का कहना है कि इस असाधारण चिड़िया के अब तक नहीं देखे जा सकने की वजह यह है कि इसने एक अजीबोग़रीब, सख्त और विपरीत हालातों वाले हैबीटेट यानी बसेरे में ही रहना पसंद किया है. वैज्ञानिकों के मुताबिक दक्षिण पूर्व एशिया में चूने की चट्टानों की गुफाओं वाले इस इकोसिस्टम के बारे में सबसे कम शोध हुआ है. चूने की कई परतें एक के ऊपर एक पहाड़ जैसी जमती जाती हैं और उनके नीचे दरारें, खोह, जल धाराएं और कई वनस्पतियां विकसित हो जाती है. यह नई बुलबुल चूने के इसी क़ुदरती घर में रहती है.

शनि का दिन हुआ पांच मिनट छोटा

जो शनि के प्रकोप से त्रस्त हैं उन्हें इस ख़बर में दिलचस्पी होगी. जिन पर शनि की ढैया, साढ़े-साती, अंतर्दशा या महादशा का प्रकोप हो उनके लिए राहत की ख़बर है. ताज़ा गणना के तहत शनि ग्रह के एक दिन की अवधि में पांच मिनट की कमी आई है. यानी अब शनि का दिन और छोटा होगा.

नई गणना के मुताबिक शनि को अब अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाने में 10 घंटे, 34 मिनट और 13 सेकेंड लगते हैं. यह अवधि पहले की गई गणना के द्वारा तय समय के मुक़ाबले पांच मिनट कम है. शनि का एक दिन जो पहले से ही काफी छोटा है, अब और छोटा हो जाएगा. गैस के बादलों से घिरे इस ग्रह की अन्य ग्रहों के मुक़ाबले ज़्यादा देर तक टिकने वाली तस्वीरें नहीं हैं. इसकी वजह से उसे घूमने की गति और स्थिति को नापना बहुत मुश्किल है. खगोल वैज्ञानिकों की गणना शनि के चुंबकीय क्षेत्र की हलचल पर आधारित होती है. हालांकि इसमें इस्तेमाल होने वाले संकेतों में उतार-चढ़ाव हो सकते हैं और इसी कारण से इस बात का सही-सही पता लगाना मुश्किल होता है कि शनि का अंदरूनी हिस्सा कितनी तेज़ी से घूम रहा है.

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और लुइसविले विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों की नेतृत्व वाली एक टीम ने शनि की धुरी पर घूमने की अवधि मापने के लिए शनि ग्रह का चक्कर काट रहे अमेरिकी अंतरिक्षयान कैसिनी से ली गईं इंफ्रा-रेड तस्वीरों का सहारा लिया. इन तस्वीरो के आधार पर किए गए शोध से उन्होंने यह नई गणना की. यह शोध ब्रिटिश जर्नल नेचर में प्रकाशित हुई है.

शनि के बारे में यह सूचना साबित करता है कि अभी भी हम इस ग्रह के बारे में कितना कम जानते हैं. भारतीय मिथकों में तो यह अपने प्रकोप के लिए हमेशा से बदनाम रहा है. अपने वलयों या रिंग्स की वजह से बाक़ी ग्रहों से अलग दिखने वाला शनि वैज्ञानिकों और खगोलशास्त्रियों के लिए भी अनूठी चुनौती है.

मच्छर का डंक ही बचाएगा मलेरिया से

दवा देने लगे, दर्द देने वाले. ज़रा रुकिए, यहां किसी फिल्मी कहानी की बात नहीं हो रही. बात हो रही है इंसान के सबसे बड़े दुश्मनों में से एक-यानी मच्छरों की. हमें मलेरिया जैसी ख़तरनाक बीमारी देने वाले मच्छर ही हमारे लिए मलेरिया के ख़िलाफ़ सबसे बड़ा हथियार साबित हो सकते हैं. यूरोप में हुए एक शोध में पता चला है कि जिन मच्छरों की वजह से मलेरिया फैलता है, वे ही इसके वैक्सीन के कारगर वाहक बन सकते हैं.

शोध के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. कार्लोस कैंपबेल ने इस बारे में विज्ञान पत्रिका न्यू इंग्लैंड जर्नल के हालिया अंक में लिखा है. शोध के तरीक़े और उद्देश्य को समझाते हुए उन्होंने लिखा है कि शोध के दौरान वैज्ञानिकों ने मच्छरों के डंक को ही ज़िंदा मलेरिया परजीवी (लाइव मलेरिया पारासाइट्स) को दवा (वैक्सीन) के तौर पर लोगों के शरीर में पहुंचाने के लिए इस्तेमाल किया. नतीजा यह रहा कि ऐसे लोग जिन्हें दवा वाले मच्छरों ने काटा था, वे बाद में मलेरिया के ख़तरे से बचे रहे. हालांकि यह शोध बड़े पैमाने पर नहीं हुआ था और न ही बहुत व्यावहारिक है, लेकिन इससे इतना तो ज़ाहिर होता ही है कि मलेरिया की दवा की खोज अब कोई सपना नहीं रहा. इस शोध से इस सिद्धांत पर भी ज़ोर पड़ता है कि मलेरिया के परजीवी ही मलेरिया के ख़िलाफ़ सबसे कारगर दवा साबित हो सकते हैं. हालांकि इस तरह का वैक्सीन तैयार करना कठिन है और कई वैज्ञानिक इस बात से सहमत भी नहीं हैं.

मलेरिया से दुनिया भर में हर साल क़रीबन 10 लाख लोगों की मौत हो जाती है. इनमें से अधिकतर पांच साल से कम उम्र के बच्चे होते हैं. सबसे ज़्यादा समस्या अफ्रीकी देशों में है. अगर इस रोग पर क़ाबू पाया जा सके तो इंसानी इतिहास की सबसे घातक और पुरानी बीमारियों में से एक को ख़त्म किया जा सकता है.

मलेरिया के परजीवी से सामना कर चुके लोग इस रोग से ज़्यादा सुरक्षित रहते हैं. इसी को आधार मानकर वैज्ञानिकों ने शोध के दौरान मॉडिफाइड मलेरिया पारासाइट को मच्छरों के डंक के द्वारा शरीर में प्रवेश करवाया. इससे उनके शरीर में मलेरिया के ख़िलाफ़ एक प्रतिरोधी क्षमता विकसित हो गई और बाद में जब उन्हें मलेरिया के परजीवी के संपर्क में लाया गया तो उन पर कोई असर नहीं हुआ. वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि वे इसी सिद्धांत पर चलकर मलेरिया के लिए उपयोगी वैक्सीन खोज पाएंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

बदले की आग में झुलस रहा है पाकिस्तान

राहुल मिश्र

परवेज़ मुशर्रफ पर देशद्रोह का मुक़दमा चलाने की बात बदले की भावना से की जा रही है. कुछ राजनीतिक दल पूर्व राष्ट्रपति से अपना हिसाब बराबर करने की ताक में हैं. वैसे पाकिस्तान का राजनीतिक इतिहास इस बात का गवाह है कि मौक़ापरस्ती और बदले की भावना राजनीतिक प्रक्रिया पर हावी रही है. पाकिस्तान में जब-जब ऐसे हालात पैदा हुए हैं, विकास को धक्का लगा है और प्रजातंत्र कमज़ोर हुआ है. इसमें कोई शक़ नहीं है कि जब जनरल मुशर्रफ ने नवाज शरीफ़ को हटाया था और उन्हें नज़रबंद करने की कोशिश की और जिस तरह भुट्टो परिवार मुशर्रफ के कार्यकाल के दौरान विदेश में शरण लेने को मजबूर हुआ, वही फिर से दोहराए जाने की आशंका है. फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि इस बार देश से भागने वाले मुशर्रफ साहब होंगे.

पाकिस्तान की सर्वोच्च अदालत (सुप्रीम कोर्ट) ने 31 जुलाई को दिए अपने ऐतिहासिक फ़ैसले में सेना द्वारा सत्ता पर क़ाबिज़ होने की प्रक्रिया को किसी भी तरह के क़ानूनी संरक्षण से अलग कर उसे ग़ैरक़ानूनी करार दिया. चौदह सदस्यों की खंडपीठ ने अवकाश प्राप्त जनरल परवेज़ मुशर्रफ का देश में इमरजेंसी घोषित करने के फ़ैसले को ग़ैरक़ानूनी और असंवैधानिक करार दिया. इसके साथ ही तीन नवंबर 2007 को लागू किए गए प्रोविज़नल कांस्टीट्यूशनल ऑर्डर को भी ख़ारिज़ कर दिया. इमरजेंसी के दौरान मुशर्रफ सरकार द्वारा लिए गए सभी फ़ैसलों को पलट दिया गया.

सुप्रीम कोर्ट के इस फ़ैसले का सबसे अहम असर ख़ुद न्यायिक व्यवस्था पर पड़ा, ख़ास तौर पर उन न्यायाधीशों पर जिन्होंने प्रोविज़नल कांस्टीट्यूशनल ऑर्डर के तहत शपथ ली या फिर जिनकी नियुक्ति इमरजेंसी के दौरान तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश अब्दुल हमीद डोगर ने की थी. यह फ़ैसला पाकिस्तान में लोकतंत्र की मौजूदा प्रक्रिया पर कोई असर नहीं डालेगा, केंद्रीय या राज्य सरकारों के कामकाज पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा. इसलिए कि उन्हें क़ानून के संरक्षण के दायरे में रखा गया है. वही क़ानूनी संरक्षण इमरजेंसी के दौरान और बाद में लिए गए कुछ फ़ैसलों पर भी लागू रहेगा. लिहाज़ा, केंद्रीय सरकार को इमरजेंसी के दौरान पास किए गए कई अध्यादेशों पर पाकिस्तानी नेशनल एसेंबली की रज़ामंदी लेनी होगी.

पाकिस्तान की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐसा ही फ़ैसला अप्रैल 1972 में भी लिया गया था, जिसमें जनरल याह्या ख़ान के सैनिक शासन को ग़ैरक़ानूनी करार दिया गया था और जनरल को तख़्तापलट के लिए ज़िम्मेदार ठहराया गया था. 1972 के उस अदालती फ़ैसले में भी याह्या शासन के कई आदेशों को संरक्षित रखा गया था. ग़ौरतलब है कि 2009 के न्यायिक आदेश में भी मुशर्रफ सरकार के कुछ फ़ैसले संरक्षित हैं, भले ही इस बार संरक्षित आदेशों की संख्या 1972 से काफी कम हैं. सुप्रीम कोर्ट के इस फ़ैसले के बाद अब परवेज़ मुशर्रफ को संविधान की अवमानना के लिए अनुच्छेद-6 के तहत मुक़दमा चलाने की कुछ राजनीतिक दलों की मांग को बल मिलेगा. 1973 में पाकिस्तानी नेशनल एसेंबली ने एक क़ानून को मंज़ूरी दी थी जिसमें अनुच्छेद 6 के तहत संविधान की अवहेलना करने वाले को मौत की सज़ा या फिर आजीवन कारावास का प्रावधान था.

इस अनुच्छेद के तहत जनरल ज़िया-उल हक़ पर कार्रवाई नहीं की जा सकी थी, क्योंकि उनके सैनिक शासन को उसी साल सुप्रीम कोर्ट से क़ानूनी करार दे दिया गया था. बाद में 1985 में नेशनल एसेंबली ने संविधान में संशोधन करके ज़िया-उल हक़ के सैनिक शासन को क़ानूनी संरक्षण दे दिया था. ठीक उसी तरह जनरल परवेज़ मुशर्रफ के शासन को भी पहले अक्टूबर 1999 में सुप्रीम कोर्ट से संरक्षण मिल गया था और बाद में दिसंबर 2003 में संविधान में संशोधन करके नेशनल असेंबली ने भी स्वीकृति दे दी थी.

नवंबर 2007 में मुशर्रफ द्वारा लगाई गई इमरजेंसी को प्रोविज़नल कांस्टीट्यूशनल ऑर्डर के बाद पुनर्स्थापित सुप्रीम कोर्ट ने मंज़ूरी दे दी थी. उस वक़्त मुख्य न्यायाधीश अब्दुल हमीद डोगर थे. 31 जुलाई के कोर्ट के फ़ैसले ने उस पुनर्स्थापित सुप्रीम कोर्ट को ही ग़ैरक़ानूनी करार दे दिया. नेशनल असेंबली, जिसमें परवेज़ मुशर्रफ को ख़ासा समर्थन था, ने इमरजेंसी के पक्ष में एक अध्यादेश जारी किया. बहरहाल, इस अध्यादेश ने प्रोविज़नल कांस्टीट्यूशनल ऑर्डर और उसके तहत लिए गए फ़ैसलों को मंजूर नहीं किया. फरवरी 2008 के चुनावों के बाद नवनिर्वाचित नेशनल असेंबली ने न ही नवंबर में लगी इमरजेंसी को समर्थन दिया और न ही उसे ख़ारिज़ किया. आज, पाकिस्तान में कुछ वकील, पीएमएलएन, जमात-ए-इस्लामी, पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफ़ और कुछ अन्य संगठन चाहते हैं कि सरकार अनुच्छेद 6 के तहत सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले को आधार बनाते हुए तीन नवंबर 2007 को लगाई गई इमरजेंसी के लिए परवेज़ मुशर्रफ पर मुक़दमा चलाए.

परवेज़ मुशर्रफ के ख़िलाफ़ देशद्रोह का मुक़दमा क़ायम करने की मांग कर रहे राजनीतिक दल और राजनीतिक समूह बदले की भावना से ग्रसित हैं. पाकिस्तान की राजनीति में प्रजातंत्र और सैनिक शासन यानी दोनों में ऐसे निरोधात्मक प्रकरण समय-समय पर आते ही रहे हैं. अक्सर ऐसे निरोधात्मक प्रकरण राजनीतिक विकास पर बुरा असर डालते हैं. राजनीति में कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि इस तरह से वे एक तीर से दो शिकार कर सकेंगे. पहला, परवेज़ मुशर्रफ को बदनाम कर सकेंगे और दूसरा, पाकिस्तान पीपल्स पार्टी की सरकार पर मुशर्रफ को सज़ा देने के लिए दबाव डाल सकेंगे. दरअसल, मौजूदा सरकार मुशर्रफ पर मुक़दमा नहीं चलाना चाहती. वहीं, कुछ अन्य गुट मानते हैं कि ऐसा करने से उन्हें मौजूदा राजनीतिक समीकरणों पर सवाल उठाने का मौक़ा मिलेगा जिसमें नेशनल रीकंसीलिएशन ऑर्डर शामिल है. दरअसल, इसी रीकंसीलिएशन ऑर्डर के तहत पीपीपी नेतृत्व को अक्टूबर 2007 में वापस पाकिस्तान आने की इजाज़त दी गई थी. आज सबसे अहम सवाल यह है कि मुशरर्फ के ख़िलाफ़ मुक़दमा चलाने का इससे क्या रिश्ता हो सकता है कि भविष्य में सेना जम्हूरियत में दख़लंदाजी नहीं करेगी? क्या यह उचित तरीक़ा है जिससे पाकिस्तान में राजनीतिक प्रक्रिया निरंतर और सामान्य तौर पर चलती रहेगी? दूसरा सवाल यह है कि कब तक राजनीतिक शक्तियां बदले की भावना से काम करती रहेंगी?

मौजूदा हालात में ज़रूरत है कि पाकिस्तान अपनी ग़लतियों से सबक़ ले और पिछली बातों को भूलकर राजनीतिक हित में काम करे. पुरानी बातों पर ध्यान देने से महज़ देश के सामाजिक और आर्थिक पहलू दरकिनार होंगे और लोगों में यह भावना फैलेगी कि जब तक पुरानी ग़लतियों को सही न किया जाए, तब तक मौजूदा हालात सही नहीं किए जा सकेंगे.

आज मुशर्रफ को सज़ा देने से इस बात की गारंटी नहीं मिलती कि भविष्य में पाकिस्तानी सेना दोबारा जम्हूरियत में दख़ल नहीं देगी. सेना के जनरलों की महत्वाकांक्षाएं एक हद तक इसके लिए ज़िम्मेदार हैं, लेकिन वह सिर्फ़ अकेला कारण नहीं है. सेना के पास महज़ सत्ता में दख़लंदाजी ही करना एकमात्र विकल्प नहीं है. वह सत्ता से बाहर रहकर भी राजनीति की दिशा और दशा पर प्रभाव बना सकती है.

आज पाकिस्तान के अस्तित्व पर सवाल उठ रहा है. उसके सामने सबसे बड़ी चुनौती पाकिस्तान को एकजुट रखने और वहां प्रजातंत्र को बचाने की है. मज़हबी कट्टरतावाद और आतंकवाद की समस्याओं से झुलस रहे पाकिस्तान के राज्यों में आक्रोश पनप रहा है. बलूचिस्तान का रेगिस्तानी इलाक़ा हो या नार्थ वेस्ट फ्रंटियर के पहाड़ी इलाक़े, हर जगह क़ानून-व्यवस्था की स्थिति चरमरा चुकी है. सरकार के फ़ैसले को लागू कराने में सरकारी मशीनरी बिल्कुल असहाय हो चुकी है. पाकिस्तान अगर इस हाल में पहुंचा है तो इसके लिए ज़िम्मेदार वहां के राजनीतिक और सैनिक नेतृत्व हैं. जिन्होंने आपसी मतभेद और बदले की राजनीति को पाकिस्तान की सरकार की नीति बना दी. पाकिस्तान के एकजुट होने के लिए यह ज़रूरी है कि वहां का नेतृत्व एक हो. बदले की राजनीति छोड़ देश को जोड़ने के लिए कारगर क़दम उठाए जाए.

rahul@chauthiduniya.com

अफ़ग़ानिस्तान के लिए फ़ैसले की घड़ी

अफ़ग़ानिस्तान में 20 अगस्त को होने वाले राष्ट्रपति और प्रांतीय काउंसिल के चुनाव में जनता हामिद करज़ई सरकार के पांच साल के कामकाज पर अपना फ़ैसला सुनाएगी. इस फ़ैसले का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चालीस से अधिक देशों को इंतज़ार है. ये चालीस देश वे हैं, जिनकी सेना अमेरिका के नेतृत्व में अफ़ग़ानिस्तान में तैनात हैं. वैसे पड़ोसी मुल्कों की नज़र भी इन चुनावों पर कम नहीं लगी है. दरअसल, अफ़ग़ानिस्तान में क़बाइली नेताओं का अनोखा वर्चस्व है. और, मौजूदा चुनाव से उभरने वाला लोकतंत्र इन क़बाइली नेताओं के लिए अनोखा होने वाला है. पिछले पांच साल से अफ़ग़ानिस्तान इसी कोशिश में है कि सदियों पुराने विवादों और इस सदी के ऊहापोह को ख़त्म कर वहां तरक़्क़ी और अमन-चैन बहाल हो सके. वहीं चालीस से भी अधिक देश अपना-अपना बाज़ार तलाश रहे हैं. इन सबके मद्देनज़र आज कई सवाल जवाब चाहते हैं. जैसे, आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध किस हद तक अफ़ग़ानिस्तान के क़बीलों को लोकतंत्र में लपेट पाएगा? मतदाता कितनी आज़ादी के साथ अपने मताधिकार का इस्तेमाल करेगा? क़बाइली सरदारों को किस तरफ़ मुनाफ़े का सौदा मिलता है. और क्या करज़ई यह साबित कर पाएंगे कि उनमें एक नए अफ़ग़ानिस्तान की संकल्पना को पूरा करने की क्षमता है? क्या वह अफ़ग़ानिस्तान में बिछी आतंक की बिसात को समेटने में सफल होंगे?

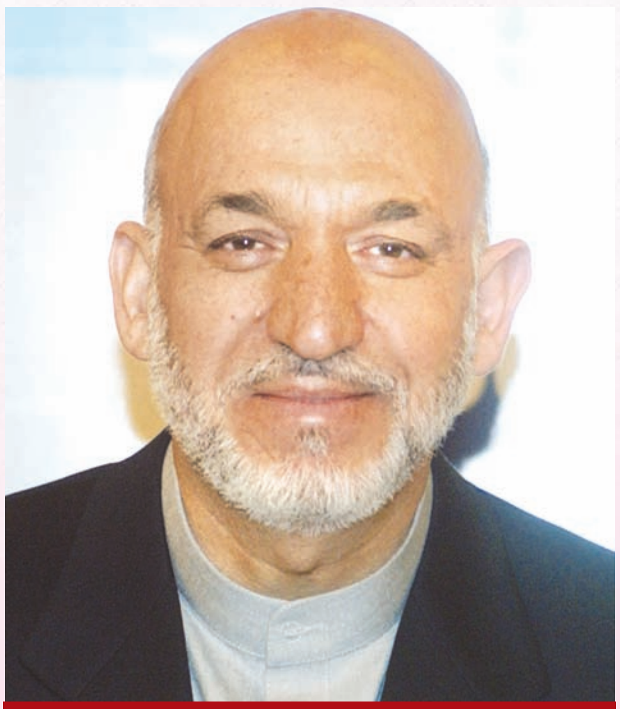

हामिद करज़ई

अब्दुल्ला अब्दुल्ला

वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर 11 सितंबर को हुए हमले के बाद अफ़ग़ानिस्तान दुनियाभर की रडार पर आ गया. वहां संगठित अल क़ायदा और तालिबान सदी का सबसे बड़ा ख़तरा बनकर उभरा. कभी दशकों तक वहां सोवियत संघ (विघटन से पहले) की विशाल सेना जिन बीहड़ों में ख़ाक छानती रही, उन्हीं बीहड़ों में आतंकवाद ने अपना डेरा जमा लिया. अफ़ग़ानिस्तान की जनता पहले क़बाइली सरदारों के बीच वर्चस्व की लड़ाई में पिसी, फिर सोवियत संघ की मौजूदगी और उसके बाद अल क़ायदा और तालिबान के जिहाद ने अपनी बर्बरता से इंसानियत की सभी हदें लांघ दीं. 2004 में अंतरराष्ट्रीय मदद और निरीक्षण में हुए राष्ट्रपति चुनावों में करज़ई अफ़ग़ानिस्तान के राष्ट्रपति चुने गए. 2009 का यह चुनाव पहला मौक़ा है जब अफ़ग़ानिस्तान की सरकार देश में लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अंजाम देने जा रही है.

अफ़ग़ानिस्तान की जनता यह बात बख़ूबी जानती है कि अंतरराष्ट्रीय मदद से करज़ई सरकार उन्हें तालिबान की गिरफ़्त से बाहर निकालने की लगातार कोशिश कर रही है. रूसी सेना की वापसी के बाद जहां एक ओर मुल्ला उमर की तालिबानी फौज ने नब्बे फ़ीसदी अफ़ग़ानिस्तान पर क़ब्ज़ा कर लिया था, वहीं आज तालिबानी अपने गढ़ों में घेरे जा चुके हैं. अर्से से बंद पड़े स्कूल और हॉस्पिटल एक बार फिर से अपना काम शुरू कर चुके हैं. पड़ोसी मुल्कों की मदद से सड़क बनाने का काम कई इलाक़ों में पूरा हो चुका है. अफ़ग़ानिस्तान की नई संयुक्त सेना का निर्माण किया जा रहा है जो विदेशी फौजों के जाने के बाद अफ़ग़ानिस्तान की आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए सक्षम होगी. अफ़ग़ानिस्तान के लिए यक़ीनन यह ठीक वैसा ही मौक़ा है जब द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी देशों की कॉलोनियां आज़ाद हो रही थीं. मसलन, चालीस और पचास के दशक में जब एशिया और अफ्रीका के अधिकांश भू-भाग पर राष्ट्र निर्माण की नींव रखी जा रही थी, लोकतंत्र का ताना-बाना बुना जा रहा था, संस्थागत ढांचों को समाज में फिट किया जा रहा था. आज अफ़ग़ानिस्तान में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढांचों को पुनर्परिभाषित करने का मौक़ा है.

आज़ादी किसी भी देश को सस्ते में नहीं मिलती, और आज़ादी के साथ मिलने वाले अधिकार कर्तव्यों की आधारशिला पर टिके होते हैं. ज़ाहिर है, अफ़ग़ानिस्तान की जनता अपनी आज़ादी की काफी क़ीमत पहले ही अदा कर चुकी है, अब वक़्त कर्तव्यों का है. इन चुनावों में उसे अपनी समझ-बूझ के साथ अफ़ग़ानों के लिए लोकतांत्रिक ढांचे की नींव रखनी है. उसके इस फ़ैसले में क़बाइली सरदारों का भी अहम किरदार है. आज अफ़ग़ानिस्तान के इन क़बाइली सरदारों को भी फ़ैसला करना है कि क्या वे अफ़ग़ानिस्तान की जनता के लिए एक सुनहरे भविष्य की परिकल्पना में विश्वास रखते हैं? क्या वे अपनी अर्जित शक्तियों को राष्ट्र की लोकतांत्रिक व्यवस्था में निहित कर अपने लिए बुलेट के बजाय बैलेट के जरिए शक्ति अर्जित करने के लिए तैयार हैं? आज अफ़ग़ानिस्तान के क़बाइली या तो करज़ई के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्र निर्माण के पक्ष में हैं या फिर वे तालिबान और अल क़ायदा के साथ मिलकर इस प्रयास का विरोध कर रहे हैं. विरोध करने वाले क़बाइली सरदारों का पाकिस्तानी सेना और ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई से गहरी सांठगांठ रही है. यह साफ तौर पर देखा जा सकता है कि जिन इलाक़ों में आज भी तालिबान अपना वर्चस्व बनाए रखने में कामयाब है, वहां पाकिस्तान की पकड़ भी ज़्यादा मज़बूत है. पाकिस्तान के प्रभाव में रहते हुए ये क़बाइली नेता मानते हैं कि करज़ई के नेतृत्व में चल रही राष्ट्र निर्माण की कवायद में उनकी उपेक्षा की जाएगी. लिहाज़ा, करज़ई के ख़िलाफ़ पाकिस्तान से समर्थन पा रहे उम्मीदवार भी राष्ट्रपति चुनाव में उतरे हैं, जैसे कि अब्दुल्ला अब्दुल्ला.

राष्ट्रपति चुनावों में इस बात की भी आशंका है कि पाकिस्तान अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर गड़बड़ी फैला सकता है. लिहाज़ा 20 अगस्त का दिन अफ़ग़ानिस्तान के साथ-साथ उन सभी देशों के लिए महत्वपूर्ण है, जो चाहते हैं कि वहां लोकतंत्र और अमन-चैन बहाल हो. उसके लिए चाहे अमेरिका की अफ़-पाक नीति हो या फिर भारत का काराकोरम में आर्थिक विकास का सुझाव, वे तभी सफल होंगे जब अफ़ग़ानिस्तान में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराए जाएं.

राहुल मिश्र
rahul@chauthiduniya.com

मीडिया वाच

घटिया लोगों में नहीं मिलेंगे नायक

गंगेश मिश्र

पहले एक सवाल. क्या आप नायक तलाश रहे हैं? और क्या उसके लिए आप ख़बरिया चैनलों की मदद ले रहे हैं? उससे, जिसकी बुनावट में शामिल एक-एक तंतु का खोखलापन आए दिन उधड़ता रहता है और जो परोक्ष रूप से आप पर ख़ुद को ही नायक के रूप में थोप रहा होता है? तो एक बात गांठ बांध लीजिए. वह यह कि घटिया, गंदे, मक्कार और कायर लोगों को दिखा-दिखा कर घटिया क़िस्मों के रियलिटी शो के लिए दर्शक बटोरने में लगे ख़बरिया चैनल आपके लिए नायक नहीं बन सकते. उस देश में आज यह कितनी अजीब बात लगती है, जहां कभी अख़बारों ने अंग्रेजी हुक़ूमत को उखाड़ फेंकने का वातावरण बनाने में शानदार योगदान दिया था या फिर इमरजेंसी के ख़िलाफ़ डटकर मोर्चा लिया था.

दुनिया के कई हिस्सों में मीडिया यह काम आज भी कर रहा है. सीएनएन और बीबीसी की साख इसके प्रमाण हैं. और तो और, भूटान का मीडिया इसका ज्वलंत उदाहरण है जहां बीती 31 जुलाई को मीडियाकर्मियों ने एक अनोखे विषय को लेकर धरना-प्रदर्शन किया. वहां पिछले दिनों पिकनिक मनाने गए स्कूली बच्चों में से सात एक नदी में डूब गए. साथियों ने शोर मचाया, लेकिन सरकारी अमले में शायद भारत जैसा ही ज़ंग लगा था. पुलिस सात घंटे बाद शवों को नदी से निकाल सकी. यह ख़बर मीडिया में प्रमुखता से प्रकाशित-प्रसारित हुई. लेकिन बात यहीं ख़त्म नहीं हुई. निकम्मे प्रशासन को उसका कर्तव्य याद दिलाने के लिए मीडिया कर्मियों ने 31 जुलाई को देश भर में धरना-प्रदर्शन कर सांकेतिक हड़ताल की न सिर्फ़ अपील कर दी, बल्कि उस पर अमल भी कर दिखाया.

अब एक दूसरी तस्वीर अपने यहां देखिए. दिल्ली में उन्हीं दिनों दसवीं में पढ़ने वाले रिभु नामक एक छात्र की अपहरण के बाद हत्या कर दी गई. यहां समाज की दिशा और दशा तय करने वाले स्वयंभू ठेकेदार बने ख़बरिया चैनलों ने हत्याकांड के नाट्य रूपांतरण दिखाने शुरू कर दिए. बग़ैर यह जाने कि इससे हासिल क्या हो सकता है.

> इसमें कोई दो राय नहीं कि चरित्र और घटनाओं की असामान्यताओं के प्रति आकर्षण हमेशा से रहा है. लेकिन ख़बरिया चैनलों ने तो मानो तमाम तरह की विकृतियों को ही जीने की कला साबित करने की मुहिम छेड़ दी है. इस हद तक कि हिस्टीरिया होने का भ्रम हो जाता है. अक्सर दिखाए जाने वाले कुछ उदाहरण आप ख़ुद याद कर सकते हैं. जैसे किसी संभ्रांत और भीड़ भाड़ वाले इलाक़े में किसी लड़की को नग्न करने की कोशिश की जाती है और ख़बरिया चैनलों के कैमरे किसी सी-ग्रेड फिल्म के रेप सीन की तरह रस ले-लेकर उसे फिल्माने में जुटे रहते हैं.

इसमें कोई दो राय नहीं कि चरित्र और घटनाओं की असामान्यताओं के प्रति आकर्षण हमेशा से रहा है. लेकिन ख़बरिया चैनलों ने तो मानो तमाम तरह की विकृतियों को ही जीने की कला साबित करने की मुहिम छेड़ दी है. इस हद तक कि हिस्टीरिया होने का भ्रम हो जाता है. अक्सर दिखाए जाने वाले कुछ उदाहरण आप ख़ुद याद कर सकते हैं. जैसे किसी संभ्रांत और भीड़ भाड़ वाले इलाक़े में किसी लड़की को नग्न करने की कोशिश की जाती है और ख़बरिया चैनलों के कैमरे किसी सी-ग्रेड फिल्म के रेप सीन की तरह रस ले-लेकर उसे फिल्माने में जुटे रहते हैं. कभी बिजली के खंभे पर चढ़ कर नंगई पर उतारू कोई विक्षिप्त व्यक्ति आपके टीवी स्क्रीन पर दिन भर मौजूद रहेगा, मानो वह कोई आदर्श प्रस्तुत कर रहा हो. या फिर किसी बच्चे की हत्या के बाद नाट्य रूपांतरण दिखा कर आपके ड्राइंग रूम में ख़ौफ़ का ऐसा संसार निर्मित किया जाता है, जिसमें किसी बच्चे को मनोरोगी बनाने के सारे तत्व मौजूद होते हैं. रही-सही कसर रियलिटी शो के विवादास्पद अंशों को बार-बार दिखा कर उत्तेजना पैदा करने की कोशिश से पूरी की जाती है. जैसे किसी रेडलाइट एरिया में बदन का कोई अंग बार-बार दिखा कर ग्राहक पटाने की कोशिश की जाती है.

यह सब करने के पीछे कोई मौलिक अवधारणा नहीं होती. यह सीधे-सीधे पश्चिमी देशों की नक़ल है. लेकिन नक़ल के लिए भी अक़्ल की ज़रूरत होती है. लिहाज़ा, नक़ल पर ही निर्भर किसी कमज़ोर छात्र की तरह हमारे यहां के अधिकतर ख़बरिया चैनल रंगेहाथ धर लिए जाते हैं. यही कारण है कि छोटे पर्दे पर ख़बरिया चैनलों से लेकर रियलिटी शो तक का मनोरंजन का सारा संसार घटिया नक़ल भर रह गया है. ऐसे में सेक्स, हिंसा और तमाम तरह की विकृतियों के प्रति सहज उत्सुकता को भुनाने का बड़ा खेल न सिर्फ़ शुरू हो गया है, बल्कि मान्यता भी पाने लगा है. सेक्स को लेकर हर समाज में हमेशा से कुंठा रही है. यह ऐसा मसला है, जिसकी एक गांठ खोलने पर दूसरी बन जाती है. इसलिए हर समाज में इसके सार्वजनिक प्रदर्शन से परहेज ही किया जाता रहा है, लेकिन आज जानकारी का अभाव कहें या मूर्खता कि छिपा कर रखी जाने वाली हर वस्तु अपराध की श्रेणी में डाली जाने लगी है. रैंप पर चलती मॉडलों के वक्षस्थल से कपड़ों के खिसकने के मामले इधर यूं ही नहीं बढ़ रहे हैं. तैयार रहिए, हमारे-आपके ड्राइंग रूम में साहस के नाम पर कोई ऐसा रियलिटी शो जल्द ही आ सकता है, जिसमें इस तर्क का सहारा लेकर पैसे के लिए युवतियां भी वक्षस्थल दिखाना शुरू कर देंगी कि सलमान ख़ान भी तो करते हैं.

सोनी पर इन दिनों चल रहे रियलिटी शो-इस जंगल से मुझे बचाओ-में पहले श्वेता तिवारी और अब निगार ख़ान इसीलिए तो सार्वजनिक रूप से अर्धनग्न होकर नहा रही हैं. और, ऐसे दृश्यों को ख़बरों के बीच-बीच में दिखा कर नैतिकता की नंगी परिभाषा गढ़ने वाले ख़बरिया चैनल वाले समाज के प्रगतिशील होने की दुहाई दे रहे हैं. छोटे से छोटे कपड़े पहनी मॉडलों के बड़े-बड़े छपते विज्ञापनों के मायने भी इससे अलग कतई नहीं हैं.

हद तो यह कि दिल्ली के एक स्कूल में ड्रेस कोड का उल्लंघन भी उन्हें प्रगतिशील समाज का लक्षण लगता है. इसलिए अनुशासन तोड़ने वाले छात्र के बजाय स्कूल प्रशासन को ही कठघरे में खड़ा किया जा रहा है. अगर स्कूली स्तर पर अनुशासन का महत्व नहीं समझाया जाएगा तो फिर सेना, पुलिस या यूं कहें कि हर क्षेत्र में बढ़ती अनुशासनहीनता कैसे रुकेगी?

कहना ही होगा कि सरकार किसी की भी हो, रोज़गार की ख़ातिर मारे-मारे फिर रहे बेकार नौजवानों के लिए सरकारी प्रयासों से ही अंधेरे बंद कमरे में छोटे पर्दे पर उतरती नंगी देहों और द्विअर्थी संवादों और अवैध संबंधों को महिमामंडित करने का खेल चलता ही रहेगा. ताकि ऐसे शो को देख-सुन कर अपनी ख़ाली ज़ेब और दुर्भाग्यों को भुलाने का इंतज़ाम बदस्तूर जारी रहे.

feedback@chauthiduniya.com

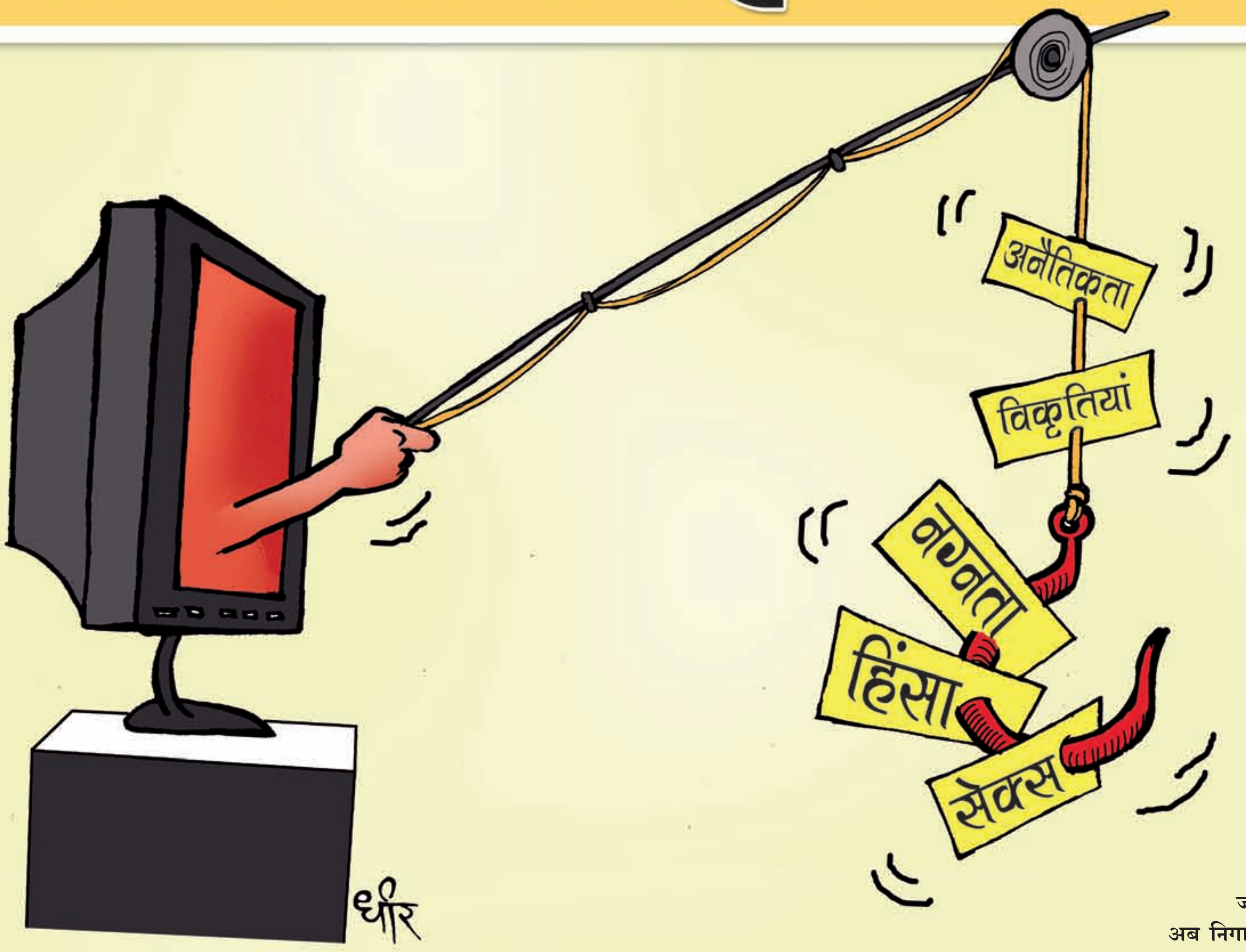

फोटो-प्रभात पाण्डेय

मुस्लिमों ने मांगा महिला आरक्षण में अपना कोटा

महिला आरक्षण बिल के वर्तमान स्वरूप को लेकर अभी देश में दुविधा और विवाद की स्थिति बनी हुई है. महिलाओं को देश की संसद में एक-तिहाई आरक्षण से किसी को आपत्ति होती नहीं दिख रही, लेकिन इस आरक्षण के अंदर वंचित और दलित वर्गों की महिलाओं को विशेष कोटा न मिलने का विरोध ज़ोर पकड़ रहा है. मुस्लिमों, दलितों, महिलाओं और अन्य वंचित वर्गों ने महिला आरक्षण बिल के वर्तमान स्वरूप में पारित होने का विरोध करने का फ़ैसला किया है. ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल, इंसान दोस्त काउंसिल, पीपल्स मूवमेंट ऑफ इंडिया, डॉ. बीआर अंबेडकर सेवा दल, मुस्लिम वीमेंस वेलफेयर ऑर्गनाइजेशन, सामाजिक न्याय मोर्चा और इंडियन एसोशिएशन ऑफ मुस्लिम सोशल साइंटिस्ट्स के प्रतिनिधियों ने एक साथ मिलकर यह फ़ैसला किया है. इनके अलावा जमीयत-उल-उलेमा-ए-हिंद, जमात-ए-इस्लामी हिंद, ऑल इंडिया मुस्लिम मजलिस-ए-मुशव्वरात और जमीयत अहल-ए-हदीस जैसे मुस्लिम संगठनों ने भी फ़ैसले का समर्थन किया है. इन संगठनों के मुताबिक इस बिल के विरोध की वजह यह है कि अगर बिल अपने वर्तमान स्वरूप में ही पारित होता है तो इससे पहले से ही शोषित और वंचित तबक़ों को और नुक़सान होगा. इनकी हिस्सेदारी पहले से ही संसद और विधानसभाओं में कम है, इस बिल से इसमें और कमी आ जाएगी.

ख़ासकर मुस्लिमों को लगता है कि अपनी जनसंख्या के अनुपात से देश की सर्वोच्च स्तरों की पंचायतों में उनका प्रतिनिधित्व आधा ही है. लोकसभा में जहां जनसंख्या के हिसाब से उन्हें सत्तर के आसपास सीटों पर क़ाबिज़ होना चाहिए था, वहीं असल स्थिति महज़ 32 सदस्यों की है. राज्य के विधानमंडलों में भी वे बहुत कम नंबरों में हैं. कई राज्य ऐसे हैं जहां मुस्लिम प्रतिनिधित्व बहुत ही कम हैं. गुजरात में देश के 12 फ़ीसदी मुसलमान रहते हैं, लेकिन वहां से एक भी मुस्लिम इस बार लोकसभा में नहीं पहुंचा है. इसके अलावा मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में भी मुस्लिम प्रतिनिधित्व न के बराबर या बेहद ही कम है. ऐसे में उन्हें लगता है कि इस बिल के पास होने पर इसका फ़ायदा अपनी आर्थिक और राजनीतिक ताक़त का इस्तेमाल कर ऊंचे तबक़ों के लोग उठाएंगे और दलितों व अक़लियत-ख़ासकर मुस्लिमों-की जगह उनके घरों की महिलाएं चुनीं जाएंगी.

> इस मसले पर हाल में ही दिल्ली में पत्रकारों से बात करते हुए ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल के महासचिव डॉ. मंज़ूर आलम ने सरकार और संसद से इस मुद्दे पर ध्यान देने की अपील की. उन्होंने कहा कि यह मुद्दा पिछड़ों और अक़लियतों को उनका जायज़ हक़ देने का है. ये लोग हमेशा से अपने हक़ों से महरूम रहे हैं और आज भी देश की संसद और अन्य जगहों पर उन्हें सही प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया है. महिला आरक्षण भी अगर बिना इनके बारे में सोचे लागू कर दिया गया तो इनके लिए हालात और बिगड़ जाएंगे.

इस मसले पर हाल में ही दिल्ली में पत्रकारों से बात करते हुए ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल के महासचिव डॉ. मंज़ूर आलम ने सरकार और संसद से इस मुद्दे पर ध्यान देने की अपील की. उन्होंने कहा कि यह मुद्दा पिछड़ों और अक़लियतों को उनका जायज़ हक़ देने का है. ये लोग हमेशा से अपने हक़ों से महरूम रहे हैं और आज भी देश की संसद और अन्य जगहों पर उन्हें सही प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया है. महिला आरक्षण भी अगर बिना इनके बारे में सोचे लागू कर दिया गया तो इनके लिए हालात और बिगड़ जाएंगे. ज़रूरत है कि महिला आरक्षण बिल में इनके लिए ख़ास इंतज़ाम किए जाएं ताकि इन वर्गों की महिलाओं को भी पूरा हक़ मिल सके. इस पूरे मुद्दे को सामजिक और जनसंख्या के हिसाब से देखने की ज़रूरत है, जिससे हर वर्ग को उसकी जनसंख्या के हिसाब से आरक्षण का फ़ायदा मिल सके . अगर इस बिल को बिना पिछड़ों और अक़लियतों को ख़ास जगह दिए बिना पारित किया जाएगा तो इससे संसद और विधानसभाओं में उनकी संख्या और घटेगी. हमारे सामने मॉरीशस, जापान और यूरोपीय देशों के उदाहरण हैं जहां कम प्रतिनिधित्व वाले वर्गों के लिए ख़ास प्रावधान किए गए हैं. उन्होंने यह भी साफ किया कि वह इस बिल का विरोध लिंग के आधार पर नहीं, बल्कि वर्ग की वजह से कर रहे हैं. वह इस बिल के तहत कोटे के अंदर कोटा की व्यवस्था चाहते हैं. यह दुखद है कि जवाहरलाल नेहरू और वल्लभभाई पटेल जैसे नेताओं के आश्वासन के बाद भी आजतक मुस्लिमों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया है. उम्मीद है कि महिला आरक्षण बिल को संसद से पारित कराने से पहले इसे और विस्तृत और ज़्यादा से ज़्यादा लोगों के लिए बनाने का प्रयास किया जाएगा. उन्होंने चेतावनी भी दी कि अगर ऐसा नहीं किया गया तो वह इसके ख़िलाफ़ ज़ोरदार आंदोलन छेड़ेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

घातक है एनीमिया को हल्के में लेना

रीतिका सोनाली

एनीमिया को हम आम भाषा में ख़ून की कमी के नाम से जानते हैं. दरअसल एनीमिया ऐसी स्थिति है जिसमें रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है. हीमोग्लोबिन का स्तर पुरुष और महिलाओं में अलग-अलग होता है. महिलाओं और पुरुषों में हीमोग्लोबिन का आदर्श स्तर 12 ग्राम प्रति डेसीलीटर (डीएल या 0.1 लीटर) से 18 ग्राम प्रति डीएल होता है. लेकिन यदि पुरुषों में हीमोग्लोबिन की मात्रा 12 ग्राम प्रति डेसीलीटर हो तो एनीमिया होने की आशंका ज़्यादा होती है जबकि औरतों में इतना ही हीमोग्लोबिन सामान्य होता है. ख़ून में हीमोग्लोबिन की सही मात्रा बहुत ज़रूरी होती है और हीमोग्लोबिन में रेड-ब्लड सेल्स का निर्माण और कार्यशैली भी प्रभावित होने से एनीमिया की स्थिति पैदा हो जाती है. महाराजा अग्रसेन अस्पताल की एएमएस डॉ.ममता जैन के अनुसार एनीमिया आजकल की जीवनशैली में सबसे ज़्यादा प्रभावित करने वाले रोगों में से एक है. स्वस्थ समाज के लिए इस रोग पर नियंत्रण रखना बेहद ज़रूरी है. डॉ. ममता जैन के अनुसार एनीमिया कई वजहों से और कई स्थितियों में शरीर पर हमला कर सकता है.

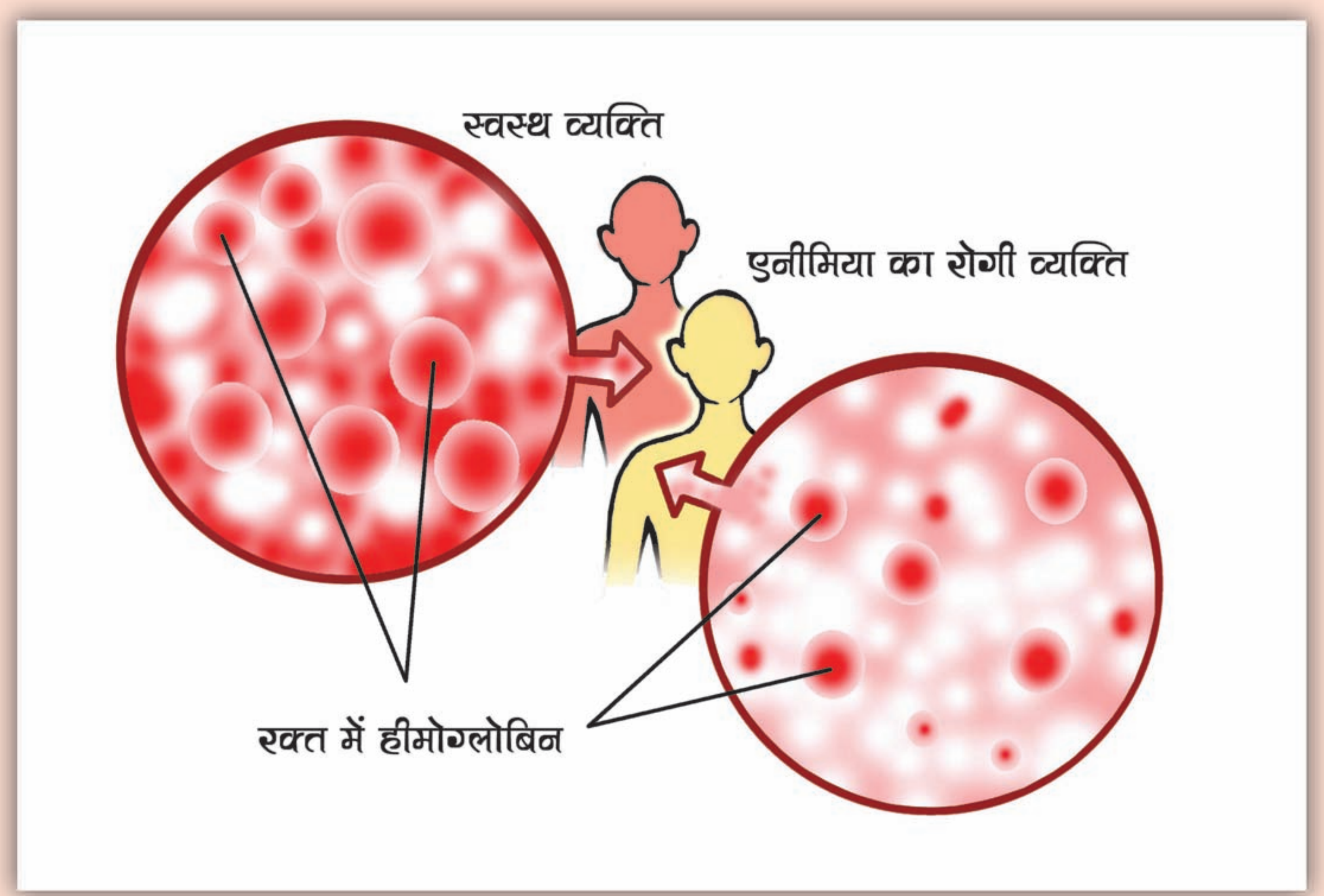

एनीमिया की स्थिति

- व्यक्ति के शरीर में हीमोग्लोबिन का स्तर 10-12 ग्राम प्रति डीएल हो तो ऐसी स्थिति माइल्ड एनीमिया कहलाती है.
- यदि हीमोग्लोबिन की मात्रा 6 से 10 ग्राम प्रति डीएल हो तो व्यक्ति को मॉडरेट एनीमिया होता है
- और 6 ग्राम प्रति डीएल से कम हुआ हीमोग्लोबिन, तो सीवीयर यानी ख़तरनाक एनीमिया की स्थिति पैदा कर देता है

एनीमिया का वर्गीकरण

- यदि शरीर में रेड-ब्लड सेल्स की संख्या 80 प्रति फेम्टोलीटर (एफएल या 0.00001 लीटर) से कम हो, तो वह माइक्रोसीटिक एनीमिया यानी *निम्न कोशिका मात्रा* कहलाती है.
- यदि संख्या 80 से 100 प्रति एफएल के बीच हो, तो यह स्थिति सामान्य कोशिका मात्रा कहलाती है.
- अगर इससे भी ज्यादा हो तो यह स्थिति मैक्रोसीटीक एनीमिया यानी अति-वृहत एनीमिया कहलाती है.

शरीर में इसी कमी को जांच कर डॉक्टर बताते हैं कि एनीमिया किस स्तर पर है और इसके होने की वजह क्या है?

अचानक तीव्र रक्तस्राव से शरीर में ख़ून की कमी एनीमिया का रोगी बना देती है. आंतरिक रक्तस्राव जैसे स्रावी नासूर या बाहरी स्राव जैसे चोट या सदमे से भी एनीमिया हो सकता है. इस तरह अचानक हुए रक्त की कमी के काफी नुक़सानदेह परिणाम हो सकते हैं. इसका सही वक़्त पर इलाज नहीं कराने से यह जानलेवा भी हो सकता है. वैसे ख़ून की कमी के अलावा भी कई दूसरे कारण भी हैं जिनसे एनीमिया होने का ख़तरा बढ़ जाता है. ये कारण हैं-

- **परनीसीयस एनीमिया :** शरीर में विटामीन बी-12 की कमी से परनीसीयस एनीमिया होने की आशंका प्रबल होती है. इस तरह का एनीमिया उन लोगों में सामान्य तौर पर देखा जाता है जो विटामिन बी-12 पचाने में असमर्थ होते हैं. यह परेशानी ज़्यादातर शुद्ध शाकाहारी व्यक्तियों को और लंबे वक़्त से शराब का सेवन करने वालों को होती है. भारी मात्रा में शराब का सेवन अस्थिमज्जा (बोन मैरो) के लिए हानिकारक होता है. शराब अस्थिमज्जा को ज़हरीला बनाकर रेड-ब्लड सेल्स के निर्माण में बाधा उत्पन्न करती है. जिससे एनीमिया का ख़तरा बढ़ जाता है. ऐसे लोगों को ज़्यादातर माइक्रोटिक एनीमिया होता है. हरी सब्ज़ियों की कमी, फलों की कमी से विटामिन बी-12 की मात्रा शरीर में कम हो जाती है, जिससे हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है.
- **थॉयमीन की कमी से :** शराब की वजह से शरीर में थायमीन की कमी हो जाती है. इससे वरनीक एन कैफिलोपैथी सिंड्रोम हो जाता है और इससे व्यक्ति को दौरे पड़ने लगते हैं. ऐसी एनीमिया भारी मात्रा में शराब के सेवन की वजह से हो जाता है.
- **रक्तस्राव से होने वाला एनीमिया :** माहवारी के दिनों में अत्यधिक स्राव, किसी चोट या घाव से स्राव, गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल अल्सर, कोलन कैंसर इत्यादि में धीरे-धीरे ख़ून लगातार रिसने से एनीमिया हो सकता है.
- **आयरन की कमी :** रेड ब्लड सेल्स का निर्माण करने के लिए अस्थिमज्जा को आयरन की ज़रूरत पड़ती है. यह पौष्टिक आहार के ज़रिए शरीर को मिल पाता है. आयरन की कमी से शरीर में एनीमिया हो जाता है.
- **लंबे समय से बीमार होने पर :** किसी भी प्रकार की दीर्घकालिक बीमारी से एनीमिया हो सकता है. यहां तक कि किसी प्रकार का इंफेक्शन का यदि लंबे तक ठीक उपचार न कराया जाए तो उससे भी एनीमिया होने की आशंकाएं प्रबल होती हैं. इसके अलावा ब्लड कैंसर जैसे ल्यूकेमेनिया या लींफोमास रेड-ब्लड सेल्स के निर्माण में बाधा उत्पन्न करती है जिससे भी एनीमिया होने की आशंकाएं बढ़ जाती हैं.
- **किडनी कैंसर :** किडनी से इरायथ्रोपोयॅटीन नाम का हारमोन निकलता है जो अस्थिमज्जा को रेड-ब्लड सेल के निर्माण में मदद करता है. जिन लोगों को किडनी का कैंसर होता है, उनमें इस हारमोन का निर्माण नहीं होता है और इसकी वजह से रेड-ब्लड सेल्स का बनना भी कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को एनीमिया हो जाता है.
- **गर्भधारण में :** कुपोषण महिलाओं में आम समस्या है. ऐसे में गर्भधारण करने पर भी इस कुपोषण की समस्या का निवारण न हो, तो एनीमिया की परेशानी हो सकती है. गर्भवती महिला में गर्भ सबसे पहले अपने आप को सुरक्षित करता है. ऐसे में वह नाभि के ज़रिए होने वाले ख़ून के संचार से पोषित होता है. ऐसे में महिला के शरीर में ख़ून की कमी हो जाती है और शरीर में पानी की मात्रा बढ़ जाती है जो ख़ून में घुल कर महिला के रक्त-संचार को प्रभावित करता है.
- **अल्पाहार या कुपोषण :** रेड-ब्लड सेल्स के निर्माण के लिए कई प्रकार के विटामिन व मिनरल्स की ज़रूरत होती है. इनकी कमी से रेड- ब्लड सेल्स का निर्माण ज़रूरत के हिसाब से नहीं हो पाता है, फिर हीमोग्लोबिन बनने में परेशानियां आती हैं. ऐसे में व्यक्ति एनीमिया का शिकार बन सकता है.
- **सीकल सेल एनीमिया :** हीमोग्लोबिन के जीन में बदलाव से यह परेशानी होती है. असामान्य हीमोग्लोबिन के कारण रेड ब्लड सेल्स सीकल यानी हंसिये के आकार के हो जाते हैं. सीकल सेल एनीमिया के कई प्रकार होते हैं जिनका असर अलग-अलग स्तर पर अलग-अलग तरीक़े से होता है.
- **थैलीसीमीया :** थैलीसीमीया आनुवांशिक भी हो सकती है. यह हीमोग्लोबिन के निर्माण की मात्रा को प्रभावित करती है यानी इसमें हीमोग्लोबिन अपनी असल अपेक्षित मात्रा में बनने के बजाय कम या ज़्यादा बनने लगता है.
- **अप्लास्टिक एनीमिया :** कभी-कभी वायरल इंफेक्शन होने से भी अस्थिमज्जा को बुरी तरह से प्रभावित होती है. इससे ब्लड सेल्स का निर्माण बिल्कुल कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप एनीमिया होने की संभानाएं ज़्यादा होती हैं. इसके अलावा कैंसर के इलाज जैसे केमोथेरपी या अन्य दवाएं लेने से भी ऐसी ही परेशानियां उत्पन्न हो जाती हैं. एनीमिया होने के ऐसे कारणों को अप्लास्टिक एनीमिया कहते हैं.
- **हीमोलायटिक एनीमिया :** सामान्य रेड-ब्लड सेल्स का आकार इसके ठीक से काम करने के लिए काफी अहम होता है. कई कारणों से रेड-ब्लड सेल नष्ट हो जाते हैं, जिस अवस्था को हीमोलायटिस कहते हैं. ऐसी स्थिति में रेड-ब्लड सेल्स ठीक तरीक़े से काम नहीं कर पाते हैं. हीमोलायटिस की स्थिति कई कारणों से पैदा हो सकती हैं. कारण आनुवांशिक और रेड-ब्लड सेल्स का अति निर्माण हो सकता है. इसके अलावा कई अवस्था में सामान्य रेड-ब्लड सेल्स में भी हीमोलायटिक एनीमिया हो सकती है. जैसे यदि व्यक्ति का अनियमित हृदय वाल्व ब्लड सेल्स को नष्ट करे.
- **अन्य:** एनीमिया के अन्य कारणों में दवाओं का दुष्प्रभाव, थायरॉयड की समस्या, कैंसर, लीवर की बीमारियां, वंशानुगत समस्याएं, एड्स व नियमित रक्तस्राव व अन्य भी एनीमिया के कारणों में उभर कर सामने आ सकते हैं.

एनीमिया के लक्षण

एनीमिया का पता लगना मुश्किल होता है इसलिए किसी भी प्रकार की तेज़ चोट लगने, छिलने या किसी भी तरह से रक्तस्राव होने पर डॉक्टर को ज़रूर दिखाएं. आम तौर पर इस तरह के रक्तस्राव से एक्यूट एनीमिया होने का ख़तरा बढ़ जाता है. चूंकि रेड-ब्लड सेल्स की संख्या कम हो जाने से शरीर के हर अंग के तंतु में ऑक्सीजन का वितरण कम हो जाता है. इसके अलावा किसी भी प्रकार की दवा का सेवन करने के परिणाम हानिकारक हो सकते हैं. माइल्ड यानी हल्की एनीमिया में लक्षण कम नज़र आते हैं, लंबे समय से हुए एनीमिया के कई लक्षण आसानी से देखे जा सकते हैं. फिर भी कम समय से हुए एनीमिया से अक्सर मोटापा/स्थूलता, कमज़ोरी, सांसें कमज़ोर पड़ना, हृदय गति के धीरे या तेज़ होने, सिर भारी होने, पीला पड़ जाने की शिकायत होती है. लंबे समय तक होने वाले गंभीर एनीमिया से सीने में दर्द, कंठ-शूल, हार्ट अटैक, चक्कर, बेहोशी और हृदय गति का बढ़ जाना इत्यादि परेशानियां सताने लगती हैं. ख़ून की कमी से होने वाले एनीमिया में लो-ब्लड प्रेशर, सांस फूलना, ठंडी या पीली त्वचा, मल का रंग काला हो जाना, बड़बड़ाहट, उदासी, क्रोध या अत्यधिक तनाव परेशान कर सकते हैं.

बचाव

एनीमिया ज़्यादातर पौष्टिक आहार लेने से ठीक हो जाता है, लेकिन कुछ प्रकार के एनीमिया में अलग-अलग तरह से उपचार कराने पड़ते हैं. ऐसे में सबसे ज़्यादा ज़रूरी है डॉक्टरी परामर्श. साधारण तौर पर युवाओं में एनीमिया का उपचार बहुत आसानी से हो जाता है, जबकि वयस्कों में एनीमिया की शिकायत जल्द दूर नहीं हो पाती है. चूंकि लंबी बीमारी से भी एनीमिया होने की आशंकाएं होती हैं, इसलिए उम्रदराज व्यक्तियों को समय-समय पर जांच के लिए जाना चाहिए.

ritika@chauthiduniya.com

खेल-खेल में बनाएं जीवन

फिल्म *चक दे इंडिया* से देशवासियों के मन में हमारे राष्ट्रीय खेल हॉकी के प्रति प्रेम और जज़्बात उभरने के बाद, खेल पर आधारित फिल्मों की बहार आ गई. ऐसा नहीं था कि सभी फिल्में हिट हुईं, पर उन्होंने हमारे समाज में खेलों की अहमियत और बढ़ा दी है. पिछले कुछ वक़्त से तो कई उद्यमियों ने खेलों के प्रति अपने जुनून को कारोबार का ज़रिया ही बना लिया है. सिडनी ओलंपिक 2000 में भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले खिलाड़ी हकीमुद्दीन हबीबुल्ला, नंदन कामत और जोसेफ ओलापल्ली ने मिलकर देश के उभरते खिलाड़ियों के लिए *गो स्पोर्ट्स* कंपनी बनाई, जिसमें खेल के अन्य गुर के साथ स्पोर्ट्स मैनेजमेंट इत्यादि प्रैक्टिकल तौर पर सिखाए जाते हैं. इनके अलावा जी आनंद व बी टी मौर्य ने एक बेहतरीन क्रिकेट पोर्टल खोल कर लोगों को खेल की दुनिया से परिचित कराने का प्रयास किया. खेलों के विश्लेषण वाले सॉफ्टवेयर का विकास करने वाली कंपनी *स्पोर्टिंगमाइंड्स* की शुरुआत भी की गई. सब को शुरुआती दौर में कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा, लेकिन अब सफलता के शिखर पर बैठी ऐसी ही स्पोर्ट्स कंपनियां देश के उभरते खिलाड़ियों का भविष्य संवारने में मदद कर रही हैं. ऐसे में खेल की दुनिया में करियर के नए अवसर विकसित हुए हैं. अगर आप खिलाड़ी नहीं भी हैं तब भी खेल की दुनिया में ऐसे तमाम क्षेत्र हैं जिनमें करियर बनाया जा सकता है. जैसे स्पोर्ट्स जर्नलिज्म, स्पोर्ट्स मैनेजमेंट, स्पोर्ट्स मेडिसिन, स्पोर्ट्स नर्सिंग, स्पोर्ट्स इवेंट व पर्सनल मैनेजमेंट इत्यादि.

1 **स्पोर्ट्स फिजियोथेरपी :** यह कोर्स हमारे देश के कुछ ही संस्थानों में उपलब्ध है. इसका दो वर्षीय मास्टर डिग्री कोर्स अमृतसर स्थित गुरुनानक देव विश्वविद्यालय में उपलब्ध है. यहां इस विषय का संचालन विश्वविद्यालय में स्पोर्ट्स ऑथोरिटी ऑफ इंडिया, अमृतसर के सरकारी अस्पताल व महाविद्यालय, कटक के ओलटपुर स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रीहैबीलिटेशन ट्रेनिंग व रिसर्च, दिल्ली स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ फिजीकली हैंडीकैप्ड, नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर ऑर्थोपेडीकली हैंडीकैप्ड, कोलकाता के सहयोग से होता है. दिल्ली स्थित इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय में भी इस विषय में छह महीने का सर्टिफिकेट कोर्स कराया जाता है. इन दोनों कोर्स के लिए फिजियोथेरपी से स्नातक होना आवश्यक है.

2 **स्पोर्ट्स मैनेजमेंट :** यह कोर्स खेल के क्षेत्र में सामाजिक और नैतिक पहलुओं के बारे में जानकारी देता है. इसके अलावा मार्केटिंग और स्पॉन्सरशिप के बारे में जानकारी प्रदान करता है. इसके अलावा फाइनेंस और स्पोर्ट्स का एक-दूसरे के साथ संबंध, इलेक्ट्रॉनिक व प्रिंट मीडिया के साथ संचार, खिलाड़ियों के कॉन्ट्रेक्ट में स्पोर्ट्स लॉ व दवाइयों के इस्तेमाल के बारे में जानकारी, खेल नीतियों और खेल संगठन के बारे में जानकारियां प्रदान की जाती है. इस कोर्स की पढ़ाई स्नातक के बाद होती है. बेहतर है यदि स्नातक में पढ़ाई का विषय फिजिकल एजुकेशन हो. इस कोर्स को करने के बाद खिलाड़ियों के पसर्नल मैनेजर या एजेंट बन सकते हैं. इसके अलावा इन दिनों क्लबों, होटलों, जिम और खेल सेंटरों पर भी इनकी मांग बढ़ी है. हमारे देश में इस विषय की पढ़ाई होने वाले कॉलेजों में कुछ हैं- तमिलनाडु स्थित अलगप्पा विश्वविद्यालय, इंदिरा गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिकल एजुकेशन एंड स्पोर्ट्स साइंस, दिल्ली, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल वेलफेयर एंड बिजनेस मैनेजमेंट, कोलकाता.

3 **स्पोर्ट्स मेडिसिन :** इसमें ट्रेनिंग, पोषण, मनोविज्ञान, किसी प्रकार की चोट, शारीरिक क्षति की रोकथाम, उपचार या पुर्नसुधार को देखने-समझने की पढ़ाई स्पोर्ट्स मेडिसिन में होती है. हर खेल में चोट लगने का ख़तरा बहुत ज़्यादा होता है. जैसे क्रिकेट में कंधे और कमर के चोट की अधिक संभावनाएं होती हैं, कबड्डी में घुटने की चोट प्राय: लग जाती है, हॉकी और फुटबॉल में एड़ी और घुटने और बॉक्सिंग में ब्रेन हैमरेज का ख़तरा सबसे ज़्यादा होता है. ऐसे में ज़रूरी है कि चोट लगने वाली जगह को बेहतरीन तरीक़े से संभाला जाए, जिससे चोट का असर कम हो और खिलाड़ी ज़्यादा परेशान न होकर पुन: जल्द से जल्द खेल पाए. इस समय हमारे देश में अलग से इसकी पढ़ाई नहीं होती है लेकिन एमबीबीएस की पढ़ाई करके स्पोर्ट्स मेडिसिन स्पेशलिस्ट हुआ जा सकता है. इसकी बढ़ती मांग को देखते हुए स्पोर्ट्स ऑथोरिटी ऑफ इंडिया स्पोर्ट्स मेडिसिन की पढ़ाई अलग से कराने पर विचार कर रही है. जिसकी शुरुआत पढ़ाई पटियाला स्थित नेताजी सुभाष नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ स्पोर्ट्स में हो चुकी है. यहां स्पोर्ट्स मेडिसिन में दो वर्षीय डिप्लोमा कोर्स कराया जाता है जिसके लिए एक प्रवेश-परीक्षा उत्तीर्ण करने के अलावा एमबीबीएस पास होना ज़रूरी है.

4 **स्पोर्ट्स जर्नलिज्म :** यह कोर्स दिल्ली विश्वविद्यालय सहित कई विश्वविद्यालयों में उपलब्ध है. स्पोर्ट्स जर्नलिज्म में विशेष रूप से काम करने के लिए खेल के प्रति लगाव और जानकारियां होना आवश्यक है. इसके बाद पत्रकारिता से स्नातक या स्नातकोत्तर या डिप्लोमा करने के बाद अपने किसी शौक़ के आधार पर नौकरी में स्पोर्ट्स बीट यानी क्षेत्र में काम कर सकते हैं. इसके बाद स्पोर्ट्स पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाकर शोहरत और पैसा हासिल किया जा सकता है.

5 **स्पोर्ट्स नर्सिंग :** इस कोर्स में खेल की ज़रूरत के हिसाब से उसकी पढ़ाई कराई जाती है. कॉमनवेल्थ गेम्स के मद्देनज़र गुरू गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय में स्पोर्ट्स नर्सिंग का कोर्स शुरू किए जाने की बात की गई थी. इसमें प्रवेश पाने के लिए नर्सिंग से स्नातक होना व प्रवेश-परीक्षा पास करना अत्यंत आवश्यक है. इसके अलावा नर्सिंग का सामान्य कोर्स करने पर भी इस जॉब में जाया जा सकता है. इसके लिए स्पोर्ट्स में रुचि होना आवश्यक है. फिजिकल एजुकेशन से स्नातक करने के बाद नर्सिंग का सामान्य कोर्स किया जाए तो स्पोर्ट्स नर्सिंग का काम फ़ायदेमंद रहेगा.

रीतिका सोनाली
ritika@chauthiduniya.com

नौकरशाही को लगी नज़र उतारनी ही होगी

सौमित्र मोहन

हाल में ही बारह उत्तरी और दक्षिण एशियाई देशों में एक हज़ार दो सौ चौहत्तर विशेषज्ञों ने एक सर्वे किया है. इस सर्वे में भारतीय नौकरशाहों को पूरे एशिया में सबसे अकुशल बताया गया है और भारत को वियतनाम, चीन और इंडोनेशिया जैसे देशों से पीछे रखा गया है. हालांकि ये तथ्य चौंकाने वाले और स्तब्धकारी नहीं हैं, लेकिन ये सभी के लिए एक चिंता का विषय ज़रूर हैं. आख़िरकार हमारे भविष्य का विकास इस संस्था की ताक़त और उसकी दक्षता और कार्यकुशलता पर ही निर्भर करेगा. इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि कभी भारतीय व्यवस्था की रीढ़ कहलाने वाली इस संस्था को इसकी स्थिति पर कोसने के बजाय गहराई में जाकर इसकी बदहाली के पीछे के कारणों का पता लगाया जाए.

वर्तमान में भारतीय नौकरशाहों की दयनीय स्थिति के लिए बहुत से कारण ज़िम्मेदार रहे हैं. कहा जाता है कि इसमें सबसे प्रमुख कारण उनके कार्य में राजनीतिक हस्तक्षेप और साथ ही राजनैतिक वर्ग द्वारा अपनी ताक़त का इस्तेमाल कर उनका तबादला या छोटा पद देकर उन्हें दरकिनार कर देना है. यह लगभग सभी ने महसूस किया है कि तबादला अधिकतर बेवजह किया जाता है और कभी-कभी तो राजनैतिक पार्टी का विरोध करने के शक़ के आधार पर भी तबादला कर दिया जाता है. यह भी कहा जाता है कि अगर नौकरशाह किसी ग़ैर-क़ानूनी आदेश के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई करने का फ़ैसला लेता है या नियम के अनुसार ही कुछ करने की सोचता है तो उसमें हमेशा अड़ंगा लगा दिया जाता है. यही वजह है कि इस तरह की अनियमितताओं को रोकने के लिए आने वाला प्रस्तावित केंद्रीय विधेयक बेहद महत्वपूर्ण है.

वर्तमान में भारतीय नौकरशाहों की दयनीय स्थिति के लिए बहुत से कारण ज़िम्मेदार रहे हैं. कहा जाता है कि इनमें सबसे प्रमुख कारण उनके कार्य में राजनीतिक हस्तक्षेप और साथ ही राजनैतिक वर्ग द्वारा अपनी ताक़त का इस्तेमाल कर उनका तबादला या छोटा पद देकर उन्हें दरकिनार कर देना है. यह लगभग सभी ने महसूस किया है कि तबादला अधिकतर बेवजह किया जाता है.

माना जा रहा है केंद्र सरकार जल्द ही ऐसा एक क़ानून लाने वाली है, जो न सिर्फ़ नौकरशाहों की कार्यकाल की तय-अवधि सुनिश्चित करेगा, बल्कि कार्यशैली को लेकर राजनैतिक हस्तक्षेप से भी बचाएगा. इतना ही नहीं, इन नौकरशाहों की नियुक्ति, तबादले और तैनाती संसदीय स्क्रूटनी के अधीन होंगे. अगर प्रस्तावित बिल वास्तविकता बन जाता है, तो आईएएस और आईपीएस अधिकारियों के अनियमित तबादलों और तैनाती पर लगाम लग जाएगी. कम-से-कम अधिकतर लोग तो ऐसा ही मानते हैं.

हालांकि अनियमित तबादले और तैनाती के ख़िलाफ़ प्रस्तावित वैधानिक सुरक्षा को लागू करने का एक पहलू और भी है. सरकार नया पब्लिक सर्विस कोड लाने की भी योजना बना रही है, जो बाबुओं की तरक़्क़ी और तबादले के लिए उनके कामकाज का कड़ाई से मूल्यांकन करेगा. यह उन प्रावधानों में से एक है, जो प्रस्तावित सिविल सर्विस बिल-2009 का हिस्सा है. इस कोड का मक़सद भारत की प्रशासनिक सेवा को और अधिक मज़बूत बनाना और प्रशासनिक विकास और शासन प्रणाली की नई चुनौतियों से निपटने के लिए तैयार करना है.

विधेयक में बची ख़ामियों को दूर किया गया है और ऐसा माना जा रहा है कि यह पब्लिक सर्विस बिल 2007 का बेहतर रूप होगा, जिसे पिछली सरकार पेश नहीं कर सकी. इस विधेयक को पहले आईएएस और आईपीएस अधिकारियों के बीच लागू किया जाएगा. उसके बाद इसका विस्तार अन्य सभी भारतीय सेवाओं जैसे भारतीय वन सेवा में भी किया जाएगा.

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सलाहों और सिफ़ारिशों को इस विधेयक में शामिल किया गया है और राष्ट्रीय स्तर पर एक नई सेंट्रल पब्लिक सर्विस अथॉरिटी (सीपीएसए) गठित करने की बात की गई है. इस अथॉरिटी पर न सिर्फ़ इन संस्थाओं के पेशेवर प्रबंधन की ज़िम्मेदारी होगी, बल्कि यह वॉचडॉग के तौर पर काम करते हुए नौकरशाहों के हितों को भी सुनिश्चित करेगी. अगर सिविल सर्विस विधेयक पारित हो जाता है तो सभी नौकरशाहों का कार्यकाल कम-से-कम तीन वर्षों के लिए निश्चित कर दिया जाएगा और अगर किसी नौकरशाह का विधेयक के प्रावधानों के अनुसार समय से पहले तबादला किया जाएगा तो उसे होने वाली असुविधा के लिए उचित मुआवज़ा दिया जाएगा. राज्यों में उच्च स्तर के अधिकारियों जैसे मुख्य सचिव और पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति एक पैनल द्वारा उम्मीदवारों की दी गई सूची में से होगी और इस पैनल में मुख्यमंत्री, विपक्ष के नेता और गृह मंत्री रहेंगे. अब तक इस तरह की नियुक्तियों का फ़ैसला लेने का विशेष अधिकार मुख्यमंत्री के पास ही है.

इसलिए कहना न होगा कि इस तरह के तबादले और नियुक्तियां सत्ताधारियों के विशेषाधिकार हैं और इसमें विपक्ष कहीं भी शामिल नहीं होता है. प्रस्तावित विधेयक के द्वारा केंद्र और राज्यों में इस तरह की नियुक्तियों के बारे में विपक्ष के नेता भी फ़ैसले में शामिल हो सकते हैं. इस तरह विपक्ष के नेता दोनों स्तर (केंद्र और राज्य) पर नियुक्तियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे. राज्य की तरह केंद्र में भी वह कैबिनेट सचिव और अन्य पदों पर होने वाली नियुक्तियों के बारे में अपनी राय दे सकेंगे. कैबिनेट सचिव और अन्य बड़े पदों पर नियुक्ति के लिए भी एक पैनल होगा जिसमें प्रधानमंत्री, विपक्ष के नेता और गृह मंत्री शामिल रहेंगे. अगर सरकार फ़ैसला लेने में उन नियमों का, जो अधिनियम में उल्लेखित है, पालन नहीं करती है तो सरकार को संसद में ऐसा करने के कारणों के बारे में बताना होगा. इस विधेयक में नौकरशाहों के कार्यों के मूल्यांकन के बारे में भी काफी ध्यान दिया गया है. अधिकारियों की उच्च पदों पर नियुक्ति से पहले उनके कामकाज को महत्व दिया जाएगा. एन्युअल कॉन्फिडेंशियल रिपोर्ट (एसीआर) की जगह कार्य के मूल्यांकन के लिए वैज्ञानिक तरीक़े से बने एक नए सिस्टम का प्रस्ताव किया गया है. यह सिस्टम एसीआर से ज़्यादा विस्तृत होगा, जो सिर्फ़ साल भर के दौरान के कार्यों का अवलोकन करता है. नया सिस्टम नौकरशाहों की उपलब्धियों और उन्होंने अपनी टीम के नेता के तौर पर किसी विभाग में कैसा काम किया है, के आधार पर उनका मूल्यांकन करेगा.

इस प्रस्तावित सिस्टम का प्रबंधन सीपीएसए (सेंट्रल पब्लिक सर्विस ऑथरिटी) के पास होगा, जिसका निरीक्षण उसका अध्यक्ष करेंगे. इसके अध्यक्ष का पद मुख्य चुनाव आयुक्त के समकक्ष होगा. सीपीएसए के अध्यक्ष की नियुक्ति पांच वर्षों के लिए एक कमेटी के द्वारा की जाएगी. इस कमेटी के सदस्यों में प्रधानमंत्री, सुप्रीम कोर्ट के जज, गृह मंत्री और लोकसभा में विपक्ष के नेता होंगे. कैबिनेट सचिव सीपीएसए के संयोजक के रूप में कार्य करेंगे. सीपीएसए नौकरशाहों के संगठन, नियंत्रण, ऑपरेशन, नियमन और प्रबंधन से संबंधित मसलों पर सरकार को अपनी सलाह देगा. सीपीएसए भी पब्लिक सर्विस कोड का संरक्षक है. इस कोड को बनाने के पीछे का विचार यह है कि नौकरशाह अपने कर्तव्य का निर्वहन जवाबदेही, देखरेख, ईमानदारी, वस्तुनिष्ठता और नियमों में रहकर करे. सीपीएसए में तीन से पांच सदस्य हो सकते हैं. जो नौकरशाह पब्लिक सर्विस कोड का पालन नहीं करते हैं, सीपीएसए उनके ख़िलाफ़ कार्रवाई करने के लिए सिफ़ारिश कर सकती है. इस विधेयक के क़ानून बन जाने के बाद सीपीएसए प्रत्येक वर्ष केंद्र सरकार को एक रिपोर्ट भी सौंपेगी, जिसमें सरकार के सभी विभागों में नए क़ानून के पालन से संबंधित जानकारी होगी.

आशा है कि इस विधेयक के क़ानून बनने के लिए जो कुछ ज़रूरी काम बाक़ी हैं उसे बहुत जल्द ही निपटा लिया जाएगा. हालांकि इस तरह के क़ानून से केंद्र-राज्य के संबंधों पर जो असर पड़ेगा, उन मुद्दों को भी जल्द ही आपसी विचार-विमर्श से सुलझा लेने की ज़रूरत है.

(लेखक प. बंगाल में आईएएस अधिकारी हैं. आलेख में व्यक्त विचार उनके अपने हैं और इनका सरकार के विचारों से संबंध नहीं है.)

feedback@chauthiduniya.com

राशिफल

(10 अगस्त से 16 अगस्त तक)

मेष 21 मार्च से 20 अप्रैल
पारिवारिक मामलों में किया जा रहा प्रयास सफल होगा. किसी बात से मन दुखी हो सकता है. आप राजनीतिक दिशा में कोई काम करेंगे तो उसमें सफलता निश्चिय ही प्राप्त होगी. श्रमसाध्य द्वारा सफलता मिलने की संभावना बनी हुई है. आलस्य की भावना पर नियंत्रण आवश्यक है.

वृष 21 अप्रैल से 20 मई
घर के कार्यों में अधिक व्यस्त रहेंगे. आप अगर किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहें हैं तो उसमें सफलता मिलने का योग बना हुआ है. कुछ ऐसा न करें जिसकी वजह से आपको बेकार की परेशानियों का सामना करना पड़े. भौतिक उपलब्धि की दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल होगा.

मिथुन 21 मई से 20 जून
आपके कुछ कार्य सफल होंगे जिनकी वजह से आपको उपहार और सम्मान प्राप्त होंगे. निजी संबंधों का लाभ मिलेगा. आय के क्षेत्र में वृद्धि के साथ ही अगर कोई परिवर्तन करने की सोच रहे हैं तो उसमें भी सफलता मिलेगी. आप अगर लेन-देन की योजना बना रहे हैं तो उसमें भी सफलता प्राप्त होगी.

कर्क 21 जून से 20 जुलाई
निकट संबंधियों से संबंध और मज़बूत बनेंगे. वाणी पर मधुरता बनाए रखने में ही भलाई है, नहीं तो अधिक बोलना हानिकारक हो सकता है. आप अगर कोई नया काम करने की सोच रहे हैं तो बिना किसी हिचकिचाहट के करें, निश्चय ही सफलता मिलेगी. पद और प्रतिष्ठा की रक्षा के प्रति सचेत रहें.

सिंह 21 जुलाई से 20 अगस्त
बेकार के कामों में अपना समय बर्बाद न करें. समय ख़राब करना आपके लिए हानिकारक होगा. स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें. किसी से बात करते समय सावधानी बरतने की आवश्यकता है. काम अधिक रहेगा, जिसकी वजह से व्यस्तता भी बढ़ी रहेगी. परिवार के लिए समय निकालने का प्रयास करें.

कन्या 21 अगस्त से 20 सितंबर
आप अगर किसी दूसरी जगह जाने के लिए प्रयास कर रहे हैं तो उसमें सफलता मिलेगी. कुछ कामों की वजह से अधिक व्यस्त रहेंगे. रचनात्मक कार्यों की दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल होगा. मनोरंजन के सुखद अवसर आएंगे. सभा-समारोहों के आयोजन का भी योग बन रहा है.

तुला 21 सितंबर से 20
जीवनसाथी के साथ मतभेद हो सकता है. इसलिए छोटी-मोटी बातों को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाने से बचें. थोड़े प्रयास से दांपत्य जीवन में मधुरता आ जाएगी. मकान, संपत्ति, रुपये-पैसे से संबंधित चली आ रही समस्या का समाधान हो जाएगा. और, आपने जो कामना की थी, वह पूरी हो जाएगी.

वृश्चिक 21 अक्तूबर से 20 नवंबर
काम अधिक होने की वजह से थकान हो सकती है. आलस्य की स्थिति बनी रहेगी. धन, सम्मान, पद, प्रतिष्ठा की दिशा में चल रहे प्रयास सफल हो सकते हैं. आप अगर किसी प्रतियोगिता की तैयारी कर रहे हैं, तो उसमें सफलता मिल सकती है. श्रम का उचित फल अवश्य मिलेगा.

धनु 21 नवंबर से 20 दिसंबर
पारिवारिक जनों का भरपूर सहयोग मिलने की संभावना बनी हुई है. विरोधी का अंत होगा. लेन-देन के मामलों पर कुछ विवाद की स्थिति बन सकती है. सावधानी बरतने की आवश्यकता है. वाणी की मधुरता बनाए रखेंगे, तो नुक़सान पर नियंत्रण पा सकते हैं. व्यवहार में कुशलता बनाए रखें.

मकर 21 दिसंबर से 20 जनवरी
स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने की आशंका है. स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही बरतें नहीं तो घातक सिद्ध हो सकता है. खान-पान का चुनाव सोच-समझकर करें. नए वाहन लेने के योग बने हुए है.

कुंभ 21 जनवरी से 20 फरवरी
आत्मविश्वास में बढ़ोतरी होगी. प्रतियोगी परीक्षा के लिए किया जा रहा प्रयास सफल होगा. कार्यस्थल और आस-पास के माहौल में सहयोगियों का भरपूर सहयोग मिलने की संभावना बनी हुई है. वैसे इस सप्ताह आपके लिए कुछ आश्चर्यजनक स्थिति भी बन सकती है.

मीन 21 फरवरी से 20 मार्च
संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. उपहार और सम्मान का लाभ प्राप्त होगा. धन को प्राप्त करने के नए रास्ते खोजेंगे. समाज में ख़ूब इज़्ज़त प्राप्त करेंगे. मनोरंजन के अवसर भी प्राप्त होंगे. किसी मित्र की बातों में आने से बचें. दुश्मनों से कोई ख़तरा मोल न लें तो अच्छा रहेगा.

ज्योतिषाचार्य पं. सुदर्शन

हिंदी अकादमी में संग्राम

अनंत विजय

दिल्ली की हिंदी अकादमी इन दिनों ख़ासी चर्चा में है. जब से हास्य कवि और जामिया के पूर्व प्रोफेसर अशोक चक्रधर को हिंदी अकादमी का सचिव मनोनीत किया गया है, तब से यह बवाल खड़ा करने की कोशिश की जा रही है. पहले अकादमी की संचालन समिति की कई वर्षों से सदस्या रही और दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में हिंदी की शिक्षिका अर्चना वर्मा ने इस्तीफ़ा दे दिया. इस्तीफ़े की वजह उन्होंने गिनाई कि एक विदूषक को अकादमी का उपाध्यक्ष बना दिया गया है और वह उनके रहते अकादमी में काम नहीं कर सकतीं. इसके बाद अकादमी के सात–आठ महीने पहले ही सचिव नियुक्त किए गए डॉ. ज्योतिष जोशी ने भी अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया और कमोबेश वही वजहें गिनाईं जो अर्चना वर्मा ने गिनाई थीं. बात यहीं नहीं रुकी. इसके बाद अकादमी से संबद्ध और वरिष्ठ आलोचक नित्यानंद तिवारी ने भी अपना इस्तीफ़ा दे दिया कि अकादमी में स्थितियां ठीक नहीं और ऐसे में उनका अकादमी से जुड़े रहना उचित नहीं है. तिवारी जी ने सीधे–सीधे अशोक चक्रधर पर तो निशाना नहीं साधा, लेकिन इशारा उधर ही था. दरअसल तिवारी जी के व्यक्तित्व में यह सब है भी नहीं. अशोक चक्रधर की नियुक्ति से खिन्न साहित्यकारों ने अकादमी में हुए इन इस्तीफ़ों को ख़ूब प्रचारित भी कराया. मीडिया में दोनों पक्षों की बातें जमकर आईं, लेकिन इन इस्तीफ़ों के पीछे की कहानी कुछ और ही है. कुछ लोगों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा तो कुछ लोगों का अपना अहम इस बवाल के पीछे है, जिसे नैतिकता या यों कहें कि गंभीर साहित्य और अगंभीर साहित्य का जामा पहनाने की कोशिश की जा रही है. अशोक चक्रधर से पहले अकादमी के उपाध्यक्ष हिंदी के बेहद अहम साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी के बेटे मुकुंद द्विवेदी थे. साहित्य में उनका क्या योगदान है, यह अब तक सामने तो नहीं आया है लेकिन वह लंबे समय तक अकादमी के उपाध्यक्ष रहे और अर्चना वर्मा व नित्यानंद तिवारी दोनों किसी न किसी रूप में अकादमी से जुड़े रहे. उन वर्षों में किसी को साहित्य की याद नहीं आई, क्योंकि मुकुंद जी शरीफ़ आदमी थे और इनमें से किसी की योजना में अड़ंगा नहीं लगाते थे. इसलिए उनका काल निर्विवाद चलता रहा. मुकुंद द्विवेदी के पहले जनार्दन द्विवेदी अकादमी के उपाध्यक्ष हुआ करते थे. या तो उनका क़द या फिर कांग्रेस के मज़बूत नेता होने की वजह से किसी ने भी कभी भी उनके ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठाई. जनार्दन द्विवेदी का भी साहित्यिक लिखा–पढ़ा अभी सामने आना शेष है. तो उस वक़्त जब कोई आवाज़ नहीं उठाई गई, तो अब अचानक से क्या हो गया कि एक भूतपूर्व प्रोफेसर को अकादमी का उपाध्यक्ष नियुक्त करने पर बखेड़ा खड़ा किया जा रहा है? नित्यानंद तिवारी ने यह बयान दिया कि ज्योतिष के कार्यकाल में हिंदी अकादमी में जितना काम हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ. नित्यानंद तिवारी जी मेरे गुरु रह चुके हैं, मैं उनकी पूरी इज़्ज़त करता हूं लेकिन गुरु जी से यह सवाल पूछने का मन तो करता ही है कि ज्योतिष के पहले अगर अकादमी में काम नहीं हो रहा था तो आपने उन वर्षों में आवाज़ क्यों नहीं उठाई? तब क्यों चुपचाप अकादमी की संचालन समिति में बने रहे?

हिंदी अकादमी को वर्षों से जानने वालों का कहना है कि इस विवाद के पीछे वह है ही नहीं जो मीडिया में प्रचारित–प्रसारित किया–कराया जा रहा है. इस विवाद के पीछे दरअसल एक दूसरी कहानी है. अकादमी से जुड़े सूत्रों का कहना है कि इस विवाद की जड़ में कॉमनवेल्थ गेम्स के वक़्त विश्व कविता सम्मेलन के प्रस्ताव को दिल्ली सरकार द्वारा ठुकराया जाना है.

अब पूरी कहानी सुनिए. दिल्ली की मुख्यमंत्री को कॉमनवेल्थ गेम्स के वक़्त राजधानी में विश्व कविता सम्मेलन कराने का मौखिक प्रस्ताव दिया गया, जो उन्होंने भी मौखिक रूप से स्वीकार कर लिया. कहा यह गया कि हिंदी अकादमी यह कार्यक्रम आयोजित कराएगी और इस पर तक़रीबन ढाई करोड़ रुपये ख़र्च आएंगे. नए–नए सचिव बने और पहला प्रशासनिक दायित्व संभाल रहे ज्योतिष जोशी ने बग़ैर लिखा–पढ़ी में दिल्ली सरकार की स्वीकृति लिए इस आयोजन के लिए एक कमिटी का गठन कर दिया. इसके सदस्य कवि कुंवर नारायण, कवि–लेखक अशोक वाजपेयी और हिंदी अकादमी से ही जुड़े प्रोफेसर नित्यानंद तिवारी के अलावा दो और लोग बना दिए गए. कार्यक्रम का अप्रूवल अभी सरकार से आया नहीं, लेकिन भाई लोग ललित कला अकादमी में बैठकर इस कार्यक्रम की रूपरेखा और विश्व कवि सम्मेलन में निमंत्रित किए जाने वाले कवियों के नाम पर मगजमारी में जुट गए. एक–दो नहीं, कई बैठकें हो गईं. अब बैठकें हो रही हैं तो सदस्यों को यात्रा भत्ता तो दिया ही जाएगा. कमिटी के सदस्यों के यात्रा भत्ते के मद में लगभग पचास हज़ार रुपये ख़र्च कर दिए गए. आरोप तो यह भी है कि स्थानीय सदस्यों को अकादमी की नियत राशि से ज़्यादा के यात्रा भत्ते का भुगतान किया गया. यह सब कुछ चल ही रहा था कि एक साथ दो घटनाएं घटीं. एक तो दिल्ली सरकार ने विश्व कविता सम्मेलन के प्रस्ताव को साफ–साफ मना कर दिया और जो ढाई करोड़ रुपये का बजट दिया गया था उसे भी मना कर दिया गया. दूसरे, अशोक चक्रधर हिंदी अकादमी के उपाध्यक्ष बना दिए गए. इन दो घटनाओं के बाद हिंदी अकादमी में हड़कंप मच गया. सवाल यह खड़ा हो गया कि राज्य सरकार ने जिस कार्यक्रम के आयोजन की अनुमति दी ही नहीं, वैसे कार्यक्रम के लिए आयोजन समिति का गठन कैसे हो गया? आयोजन समिति का गठन हो भी गया, तो उसकी बैठकें कैसे होने लगीं और यात्रा का भुगतान किस मद से किया कराया गया? बेचारे नए नवेले सचिव यहीं गच्चा खा गए. ऐसा प्रतीत होता है कि उनके सलाहकारों ने उन्हें ग़लत सलाह देकर फंसा दिया. दूसरे, अकादमी को पर्दे के पीछे से चलानेवाले कर्ताधर्ताओं को यह अंदाज़ा नहीं था कि अशोक चक्रधर की नियुक्ति हो जाएगी. उन्हें लग रहा था कि उनके ही खेमे का कोई साहित्यकार इस गद्दी को सुशोभित करेगा, लेकिन यह हो न सका. जब यह हो न सका तो फिर इन सबसे बचने के लिए नैतिकता का ताना–बाना बुना गया. और, इस बात पर साहित्यकार बिरादरी में कनफुसकी शुरू कराई गई कि एक विदूषक या फिर मंचीय कवि को अकादमी का उपाध्यक्ष बना दिया गया, जो एक पवित्र संस्था को डुबो देगा. लेकिन जब सरकार की तरफ़ से हर साल दिए जाने वाले पुरस्कारों की संख्या में कटौती का प्रस्ताव आया तो सभी ने इसे स्वीकार कर लिया. किसी ने भी ज़रा भी विरोध नहीं किया. ग़ौरतलब है कि हिंदी अकादमी हर साल कृति और साहित्यकार सम्मान के नाम पर लगभग दो दर्जन पुरस्कार देकर लेखकों को सम्मानित करती रही है और इसी बहाने किताबों की ख़रीद हो जाती थी जो बाद में अकादमी अपने कार्यक्रमों के बहाने बंटवा देती थी. इस तरह प्रचार–प्रसार भी हो जाता था. उधर अशोक चक्रधर ने ख़ुद मोर्चा संभाला और अख़बारों में बयान देने लगे. पिछले दिनों एक राष्ट्रीय दैनिक को दिए एक साक्षात्कार में अशोक चक्रधर ने स्वीकार किया कि उन्होंने कांग्रेस पार्टी के लिए चुनाव पूर्व कैंपेन के लिए गाने लिखे. यह कहकर वह सत्ताधारी दल से अपनी नज़दीकी का अहसास साहित्यकारों को करा कर उन्हें दबाव में लेना चाहते हैं. अच्छा होता अगर वह ये बातें अपने साक्षात्कार में नहीं कहते. लेकिन अब सवाल यह खड़ा हो गया है कि राजधानी में सक्रिय इस अकादमी का भविष्य क्या होगा? सचिव ज्योतिष जोशी के इस्तीफ़े के बाद अकादमी का कामकाज ठप है. गतिविधियों पर विराम–सा लग गया है. साहित्यकारों के आपसी झगड़े ने एक अच्छी–भली संस्था का भट्ठा बैठा दिया. और, अब इस बात की संभावना प्रबल हो गई है कि इस संस्था पर अफसरों का क़ब्ज़ा हो जाए और राजधानी की इस अकादमी का हश्र भी अन्य सूबे की अकादमियों जैसा हो जाए और अफसरों की ऐशगाह बन जाए.

(लेखक आईबीएन7 से जुड़े हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

बौद्ध धर्म का पतन

व्यालोक

हमने पिछली बार यह चर्चा की थी कि किस तरह बौद्ध धर्म पर भी सनातन धर्म की कुरीतियां हावी हो गईं, और वह छाया कितनी बड़ी हो गई. बौद्ध धर्म के श्रावकयान से सहजयान बनने तक की दूरी बहुत ज़्यादा है और इन दोनों के रूप भी परस्पर मेल नहीं खाते हैं. दरअसल हीनयान ही बुद्ध का मौलिक धर्म था और बाद को महायान हो या सहजयान, दरअसल वे बौद्ध धर्म के पतन के ही प्रतीक थे. मौलिक तौर पर बुद्ध ने भोग के त्याग एवं आचारों की पवित्रता को ही प्रधान माना था, लेकिन बाद के काल में जिन सांसारिक सुखों को बुद्ध ने निर्वाण पाने में बाधा बताया था, वही सुख बौद्ध धर्म और आचार के प्रधान हो गए.

बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा पर तो शाक्त और वामाचारी प्रभाव बुरी तरह हावी हो गए. शाक्तों में तंत्र–मंत्र और योग की प्रधानता है. उनका भी दर्शन दरअसल अद्वैत दर्शन से प्रभावित है. जब परमात्मा और तत्व एक हो जाते हैं, तो दरअसल उनके बीच का भेद भी मिट जाता है, वामाचार असल में शून्य से शून्य की यात्रा है. इस दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति (नारी) का मिलन ही असल में मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति का रास्ता है.

बुद्ध ने नारियों का प्रवेश निषिद्ध बताया था, लेकिन जब स्त्रियां भी मठों और संघों में (अक्सर युवतियां) प्रवेश करने लगीं, तो भिक्षुओं का ब्रह्मचारी रहना लगभग असंभव हो गया. अपने स्खलन को जायज़ ठहराने के लिए ही फिर उन्होंने तरह–तरह के तर्क गढ़े. बौद्ध धर्म शास्त्र चूंकि उनके कार्यों का समर्थन नहीं करते थे, इसीलिए इन लोगों ने अपने समाज को गुह्य समाज का नाम दिया. इसी तरह जब उनके समाज में अधिक लोग हो गए, तो उन्होंने अपना धर्मशास्त्र तक बना लिया. इनके पहले धर्मशास्त्र का नाम ही गुह्य–समाज तंत्र था. मज़े की बात तो यह कि इसमें ख़ुद बुद्ध के मुंह से कहलवा दिया गया कि तंत्र–मार्ग का बौद्ध धर्म से कोई विरोध नहीं है.

कुल मिलाकर, बौद्ध धर्म तो महायान की शुरुआत से ही तंत्र–मार्ग की ओर झुकने लगा था. हां, चौथी शताब्दी के बाद तो यह मुख्य तौर पर तंत्र–मार्ग का ही अनुसरण करने लगा. इसके बाद वज्रयान के आते–आते तो बौद्ध धर्म की तमाम मान्यताओं को ही सिर के बल खड़ा कर दिया. पहली बार, इसमें बताया गया कि समाधि और योग में सफलता पाने के लिए शक्ति यानी स्त्री की उपस्थिति ज़रूरी है. तंत्रमार्ग का सार यह है कि विष ही विष को काट सकता है. इसी तरह जब मानव अद्वैतवादी हो जाता है, तो फिर खाद्य, अखाद्य, पेय–अपेय का तो प्रश्न ही नहीं उठता. पंच मकारों– मत्स्य, मांस, मदिरा, मुद्रा और मैथुन–के उपयोग से तंत्रमार्गी साधना का जन्म भी इसी तर्क पर हुआ. हालांकि, इसके बेहद नकारात्मक प्रभाव पड़े और तांत्रिकों को भय की नज़र से ही देखा जाने लगा. इस पर चर्चा और विस्तार से करेंगे, फ़िलहाल तो बौद्ध धर्म के पतन की बात.

गुह्य–समाज तंत्र से वज्रयान की यात्रा तक तो बुद्ध के तमाम सिद्धांतों की क़ब्र खोद दी गई. जिस शारीरिक कष्ट और त्याग की शिक्षा बुद्ध ने दी थी, उसे ही नकार दिया गया. गुह्य समाज वालों ने खुल्लम–खुल्ला कहा कि कृच्छाचार (शरीर को कष्ट देना) से निर्वाण नहीं मिलता, बल्कि वह तो प्रकृति के ख़िलाफ़ जाना है. इस समाज की मान्यता थी कि वज्रयानी साधुओं को नियमों से सर्वथा स्वाधीन होकर विचरने से भी पाप नहीं लगता है. जब उस तंत्र का बोलबाला हुआ, तो बौद्ध साधक औघड़ों को भी मात देने लगे. यहां तक कि वज्रयान के प्रसिद्ध चौरासी सिद्ध अद्भुत प्रकार से रहा करते थे. इनके नाम भी अजब होते थे. ये शराब में मस्त, श्मशानवासी लोग खुलेआम स्त्रियों का उपभोग करते थे.

इन सबके बाद बौद्ध धर्म के पतन में शेष ही क्या रह गया था?

vyalok@chauthiduniya.com

मुसलमान

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि इक़बाल को बुख़ार के कारण न्यूमोनिया हुआ था और रशीद परकार के घर में सुलाया गया था...आगे पढ़िए कि उसके बाद क्या हुआ...

एकाएक ईरानी लड़की को याद आया, सुरती कहां? वह अचानक बोल उठी.

मैं खिड़की से खिसक गया. उनके रंग में भंग करने की मेरी इच्छा न थी. अपनी पीड़ा ज़ाहिर करके मैं उन्हें चिंता में नहीं डालना चाहता था.

मुझे खोजती हुई ईरानी लड़की मेरे कमरे में आई तो मैं उस समय बुख़ार की गिरफ़्त में आ चुका था. और मेरा बुख़ार भी कोई मामूली नहीं था, टाइफाइड था.

ट्रिप के दिनों दहाणू के स्थानीय डॉक्टर की दवाओं और सुइयों पर टिका रहकर मैं बंबई वापस आया और अपने फेमिली डॉक्टर दस्तूर से सलाह ली. उन्होंने फ़ौरन अस्पताल में दाख़िल हो जाने की सलाह दी.

एक महीना और दस दिन मैंने हबीब हॉस्पिटल में बिताए.

इक़बाल क़रीब दस दिन न्यूमोनिया से जूझकर फिर से खड़ा हो गया. अब उसका सीना पहले जैसा मज़बूत नहीं रहा था. उसकी आंखें धंस गई थीं. उस एक दिन का हमाली काम उसे सचमुच भारी पड़ा था.

इतना संतोष ज़रूर था: उसकी निष्ठा और ईमानदारी से प्रसन्न होकर रशीद परकार ने उसे तय किए हुए दो सौ रुपये के अलावा सौ–सौ रुपये के तीन बतौर बख़्शीश दिए थे. घर–ख़र्च और दवा–दारू का बिल भरने में ये रुपये हवा हो गए.

बीमारी से उठकर उसने सबसे पहले रशीद से संपर्क किया. डोंगरी के टैक्सी स्टैंड के पास वह खड़ा था.

कोई काम मिलेगा? इक़बाल ने उसके सामने खड़े होकर पूछा.

तेरे कू मैं बोला था न? उसके दिमाग़ में अभी भी उस दिन की घटना घूम रही थी, थोड़ी– सी पी ली होती तो आज तेरी ये हालत नहीं होती.

रशीद..

तब तो साला इस्लाम की फेंकने लगा. बोला, शराब हराम है. अबे ये तो सोच, अगर शराब हराम है तो ख़ुदा ने उसको बनाया कायकू?

इक़बाल को इस समय बहस में दिलचस्पी नहीं थी. उसने फिर अपना सवाल दोहराया, रशीद मैं तुम्हारे पास काम मांगने आया हूं.

देख भीड़! इस बार उसने इक़बाल के चेहरे को ग़ौर से देखते हुए मित्रभाव से कहा, अब थोड़े दिन तेरे से काम नहीं होगा. सच्ची बात ये है कि तेरे कू अभी भी आराम की ज़रूरत है. दूसरा ये कि जिसकी जगे (जगह) पर तेरे कू एक दिन के लिए रखा था, वो वापस आ गया है.

इक़बाल निराश हो गया. निराशा में ही ग़ोता खाता वह हाजी अली आया और दरगाह की तरफ़ पीठ करके समुद्र के किनारे बैठ गया. सूर्य अस्त होने की तैयारी में था. इक़बाल की परछाईं लंबी होकर रास्ते पर फैली थी. शहर से उपनगरों की तरफ़ जाते वाहन मानो उसकी परछाई कुचलते हुए दौड़ रहे थे. फिर भी वह सुरक्षित थी.

वाहन क़रीब आते ही छाया छलांग मारकर उन पर चढ़ जाती थी. वाहनों के चले जाने पर वह फिर से सड़क पर लेट जाती थी.

कुछ अलग तरह से वह सांप–सीढ़ी का खेल खेल रहा था. उसी समय उसकी नज़र शहर की ओर जाती इंस्पेक्टर भेसाड़िया की जीप पर पड़ी.

उसकी आंखें चमक उठीं. वह फ़ौरन उठकर जीप के समानांतर दौड़ने लगा. जीप सामने की सड़क पर थी. वह इस तरफ़ फुटपाथ पर था. बीच में दौड़ते जा रहे वाहनों की भीड़ थी.

कुछ क़दम दौड़कर इक़बाल पेट्रोल पंप तक आया, और रुक गया. एकाएक उसे ख़याल आया, अपनी मूर्खता पर हंसी भी आई. जीप के साथ दौड़ना संभव नहीं था. दूसरे, जीप को रोककर उसे भी कौन–सा लाभ होने वाला था. इंस्पेक्टर भेसाड़िया से वह क्या उम्मीद रखता था?

शांतिपूर्वक विचार करने पर उसे लगा, जीप को देखकर उसके मन में आशा बंधी थी, शायद इंस्पेक्टर भेसाड़िया उसे कोई राह सुझाएं. उसकी बेकारी दूर करें.

कुछ क़दम दौड़कर इक़बाल पेट्रोल पंप तक आया, और रुक गया. एकाएक उसे ख़याल आया, अपनी मूर्खता पर हंसी भी आई. जीप के साथ दौड़ना संभव नहीं था. दूसरे, जीप को रोककर उसे भी कौन– सा लाभ होने वाला था. इंस्पेक्टर भेसाड़िया से वह क्या उम्मीद रखता था? शांतिपूर्वक विचार करने पर उसे लगा, जीप को देखकर उसके मन में आशा बंधी थी, शायद इंस्पेक्टर भेसाड़िया उसे कोई राह सुझाएं. उसकी बेकारी दूर करें.

हताश नज़रों से वह दौड़ती जा रही जीप को देख रहा था. और उसके आश्चर्य के बीच कैडबरी हाउस तक जाकर जीप ने यू–टर्न लिया. अब जीप उसकी दिशा में आ रही थी.

फिर आशा जन्मी. फिर एक बार उसकी आंखों में चमक पैदा हुई. जीप उसके क़रीब से गुज़रकर पेट्रोल पंप पर खड़ी हो गई. भेसाड़िया जीप से बाहर निकलकर पारदर्शक कांचवाले केबिन में दाख़िल हो गया.

ऐसा कैसा हुआ? उसे देखकर भेसाड़िया को तो मुस्कान बिखेरनी चाहिए थी. जैसे इक़बाल का कोई अस्तित्व ही न हो, इस तरह उसने मुंह मोड़ लिया था.

इक़बाल ने फुटपाथ पर से देखा, उस केबिन में दो पुरुष बैठे हुए थे. मालिक की कुर्सी पर बैठा युवक पेट्रोल पंप का मैनेजर हो सकता है. दूसरा पंजाबी था. सामने की कुर्सी पर बैठा वह कौन होगा? इक़बाल अंदाज़ नहीं लगा सका.

संकोच अनुभव करते हुए वह केबन के पास आया और बिना कुछ बोले खड़ा हो गया. भेसाड़िया पंजाबी पुरुष के साथ बात कर रहा था. इक़बाल ने समझ लिया, पंजाबी भेसाड़िया का मित्र था. उससे मिलने भेसाड़िया यहां आया था. दोनों कुछ बातें कर रहे थे. इक़बाल सब कुछ देखता था, सुन नहीं सकता था.

थोड़ी देर बाद भेसाड़िया की नज़र इक़बाल पर पड़ी. पलभर के लिए उसे शंका हुई–सामने खड़ा युवक कौन होगा? फिर कुछ समझ में आने पर अचानक उसका चेहरा खिल उठा. वह तुरंत बाहर भी दौड़ आया.

बेटा! क़रीब से इक़बाल के नख–शिख देखते हुए भेसाड़िया ने कहा, पिछली बार तुझे देखा था तब तू पानी (बछड़े) जैसा था और आज? घोड़े जैसा, पर रेस का नहीं, विक्टोरिया का. विक्टोरिया के घोड़े जैसे ही ढीले–ढाले होते हैं. तबीयत तो ठीक है न?

इक़बाल ने इशारे से हां कहा.

तो कमर सीधी कर. भेसाड़िया ने उसकी पीठ पर धौल जमाते हुए कहा, सिर ऊंचा रख. अब बोल, काम–काज कैसा चल रहा है?

एकदम ठंडा.

क्या सारे जहाज़ डूब गए?

भेसाड़िया इसी भ्रम में था कि वह अब भी घड़ियाल गोदी में शराब की बोतलों की तस्करी करता होगा.

नहीं साहब! इक़बाल ने जवाब दिया.

तो?

उसमें गुज़र–बसर नहीं होता.

फिर लोभ जागा क्या, बेटे? मज़ाक़ कर भेसाड़िया गिलहरी की तरह खी–खी–खी कर हंसा, वह कहावत तो याद है न कि लोभ से लक्षण जाए.

जी साहब.

तो?

घर–ख़र्च निकलता है, कॉलेज का ख़र्च नहीं निकलता.

भेसाड़िया की आंखें कुछ पलों के लिए उसके चेहरे पर स्थिर हो गईं. इक़बाल स्कूल छोड़कर कॉलेज में दाख़िल हुआ था, यह उसके लिए समाचार था.

एस.एस.सी. में कितने प्रतिशत अंक मिले?

फर्स्ट क्लास आया हूं, साहब. उसने गर्व से बताया.

शाबाश! थोड़ा सोचकर भेसाड़िया ने फिर पूछा, कौन–सा कॉलेज ज्वाइन किया है?

भवंस.

क्या बनना है?

डॉक्टर.

इसमें तो बहुत पैसा लगेगा!

इसीलिए तो आपके पास आया हूं.

हूं... थोड़ी देर ख़ामोश रहकर उसने एक नया सवाल किया, गाड़ी चलानी आती है?

जी.

मैं घोड़ागाड़ी की बात नहीं करता.

जी, साहब.

कार, मोटरकार की बात कर रहा हूं. स्पष्ट करते हुए उसने अपना प्रश्न ज़ोर देकर दोहराया, कार चलाना आता है?

उड़ाना आता है और कार से उड़ा देना भी आता है.

(अगले अंक में जारी)

कहीं हद पार तो नहीं कर रहा तकनीक से प्यार?

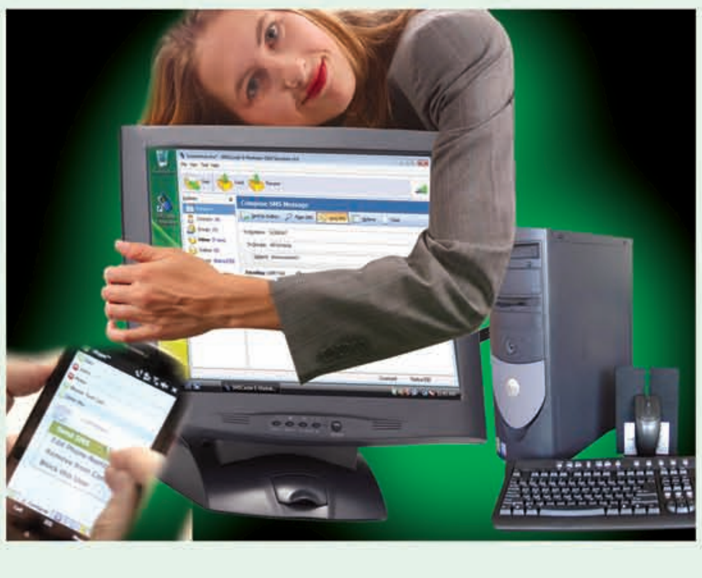

आज बिस्तर पर बीमार पड़ी राधिका कभी दोस्तों के बीच टेकी के नाम से पहचानी जाती थी. टेकी यानी टेक्नोलॉजी की दीवानी. दरअसल राधिका इस जेनरेशन के उन बहुत सारे लोगों जैसी है, जिनके लिए तकनीक ज़िंदगी का सबसे अहम हिस्सा है. उसके रूटीन पर नज़र डालें तो यह साफ दिखाई देता है कि उसकी ज़िंदगी में तकनीक कितनी अहम चीज़ थी. उसके दिन की शुरुआत अपने मोबाइल और डेस्कटॉप पर मैसेज देखने से होती. वह दिन भर अपने सेलफोन से एसएमएस करती रहती थी, यहां तक की क्लास के बीच में भी, जिसकी शिकायत स्कूल से कई बार मिल चुकी थी. घर में वह या तो कंप्यूटर पर चैट करने में बिज़ी रहती थी या मोबाइल पर लगी रहती थी. ज़ाहिर है, उसकी इन हरक़तों से उसके मां-बाप भी परेशान थे.

इतने कि आख़िरकार स्कूल से एक और शिकायत आने के बाद उन्होंने राधिका को घर में बंद रहने की सज़ा दे दी और उसका मोबाइल भी छीन लिया. अगले कुछ दिनों में राधिका बुरी तरह से बीमार हो गई. उसकी ख़राब तबीयत का कारण न तो उसके मां-बाप को समझ में आया, न ही इलाज कर रहे डॉक्टरों को. घबराहट, घुटन और बुख़ार ने उसे बिस्तर पर क़ैद कर दिया. दूसरे शब्दों में कहें तो उसकी हालत कुछ ऐसी हो गई जैसे उसके शरीर का कोई हिस्सा काट दिया गया हो. वैसे यह बात सही ही है. हमारी ईज़ाद की गई तकनीक हमारी ज़िंदगी का हिस्सा ऐसे बन चुकी है जैसे हमारे रगों में दौड़ रही हो. राधिका कोई अकेली नहीं है, ऐसे लाखों लोग हैं जिनको लगता है कि अगर ज़िंदगी में तकनीक न हो तो जीना ख़त्म हो जाएगा. मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि इंसान हमेशा से किसी का साथ चाहता है. भले वह इंसान हों या जानवर. शायद यही वजह है कि हम जानवरों को पालतू बनाकर घरों में जगह देते हैं. जीवित वस्तुओं से इस प्यार को साइंस की भाषा में बायोफीलिया कहते हैं. हालांकि तकनीक के बढ़ते क़दमों ने हमारे औज़ारों को, मशीनों को भी एक नई ज़िंदगी दी है. ज़िंदा चीज़ों की जगह अब तकनीक के औज़ार ले रहे हैं. तकनीक से प्यार इस तरह बढ़ गया है कि उसने दीवानगी की शक्ल ले ली है. ज़ाहिर है, यह एक बीमारी है. इस बीमारी को कहते हैं- टेक्नोफीलिया. सोते-जागते, खाते-पीते हर वक़्त तकनीक से जुड़े रहने की इस बीमारी को समझना- आसान नहीं होता. इस बीमारी के शिकार लोगों को भी यह पता नहीं चलता कि वे किस मुसीबत में हैं. मुसीबत भी ऐसी कि काम करने में सुविधा पाने की कोशिश ही समस्या बन जाती है. कंप्यूटर, मोबाइल और ऐसे तमाम उपकरणों ने हमारी ज़िंदगी में जगह बना ली है. धीरे-धीरे उनका दखल इतना ज़्यादा हो गया कि हम अपने आस-पास के लोगों को नज़रअंदाज़ करने लगे. मनोविज्ञान के शोध छात्र नवीन चौहान बताते हैं कि ऐसे लोग धीरे-धीरे चिड़चिड़े हो जाते हैं, दूसरों से मिलना जुलना पसंद नहीं करते और उनके स्वास्थ्य पर इसका असर दिखता है. कई माता-पिता अपने बच्चों के वीडियो गेम या इंटरनेट से चिपके रहने से परेशान रहते हैं, यह भी एक तरह का टेक्नोफीलिया ही है. कभी-कभी वक़्त के साथ इसमें बदलाव आ जाता है लेकिन कभी यह जीवन भर की परेशानी बन जाती है. हालांकि ऐसा नहीं है कि टेक्नोफीलिया कोई नई चीज़ है, और इसका असर केवल इस जेनरेशन में देखा गया है. तकनीक हमेशा से लोगों को आकर्षित और मोहित करती रही है. इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं जब लोग अपने औज़ारों से मोहब्बत करते थे, तब हथियारों को जान से ज़्यादा संभाल कर रखते थे. कई आविष्कारकों ने अपने और अपने आविष्कार के बीच के प्रेम के बारे में विस्तार से लिखा है. 1499 में लिखी गई हाईपनेरोटोमेकिया पॉलिफिली नाम की किताब का नायक इमारतों से प्यार करता है. इतिहास में ऐसे तमाम उदाहरण हैं जो दिखाते हैं कि तकनीक की दीवानगी कोई नई चीज़ नहीं है. हाल के समय में तकनीक का विकास बेहद तेज़ी से हुआ है, और उसी तेज़ी से टेक्नोफीलिया भी फैला है. अजीब बात है कि जिस तकनीक का इस्तेमाल लोग अंधाधुंध लोगों से जुड़ने के लिए कर रहे हैं, असलियत में वही उसे दूसरों से दूर कर रही है. टेक्नोफीलिया का कोई इलाज नहीं है, न ही इसे रोकने के लिए कोई दवा दी जा सकती है. हां, इसे समझा जा सकता है. राधिका के मामले में उसके मां-बाप ने यही ग़लती की. वे तकनीक के प्रति उसकी दीवानगी को उसकी शरारत मानते रहे और उसकी सज़ा दे दी. होना तो यह चाहिए था कि वे राधिका की तकनीक की ज़रूरत को समझें. ऐसे लोग तकनीक के बिना नहीं रह सकते, इनकी हालत किसी नशे के आदी की तरह ही है. ज़रूरत इस बात की है, पहले ऐसे लोगों की समस्या को समझा जाए. फिर उन्हें धीरे-धीरे इस बारे में बताया जाए और तकनीक के इस्तेमाल को कम करने की कोशिश की जाए. साथ ही ऐसे लोगों के साथ वक़्त बिताया जाए, क्योंकि अक्सर अकेलेपन में ही गैजेट और तकनीक हमारे साथी बन जाते हैं. ऐसे लोगों को प्रकृति की ख़ूबसूरती से भी वाक़िफ़ कराना चाहिए.

टेक्नोफीलिया कोई शारीरिक रोग नहीं, एक मानसिक स्थिति है. इसे केवल साथ और समझदारी से ख़त्म किया जा सकता है. वैसे भी तकनीक को हमने अपने फ़ायदे के लिए बनाया है, उससे प्यार करने में कोई दिक़्क़त नहीं है. बस प्यार एक हद में रखें ताकि ज़िंदगी पूरी तरह से जी सकें. कहते हैं न कि -और भी ग़म हैं ज़माने में....

नोकिया 6760 स्लाइड अब भारत में भी

क्या आप नए हैंडसेट ख़रीदने के शौक़ीन हैं? अगर नए-नए फीचर्स आपको आकर्षित करते हैं, तो आपके लिए अच्छी ख़बर है. हाल ही में अमेरिका स्थित एटी एंड टी नेटवर्क के लिए नोकिया ने सर्ज हैंडसेट लांच किया था. अब कंपनी उसी हैंडसेट को भारतीय बाज़ार में नोकिया 6760 स्लाइड के नाम से उतारा है. नोकिया 6760 तीन रंगों में उपलब्ध है.

123 ग्राम के इस हैंडसेट में टीएफटी (थीन फिल्म ट्रांजिस्टर) स्क्रीन है, जो 320*240 पिक्सल के हिसाब से 1600 मिलियन रंग प्रदर्शित करता है. इस हैंडसेट के ऊपर 5-वे ज्यॉपैड और सामान्य तौर पर नोकिया में जो बटन आते हैं वे बटन हैं. इसके साथ ही हैं-तीन मल्टीमीडिया की.

इस हैंडसेट के बैक साइड में 3.15 मेगापिक्सल(सीएमओएस सेंसर) का कैमरा लगा हुआ है. इतना ही नहीं, यह क्यूवीजीए वीडियो भी रिकॉर्ड कर सकता है. स्टिल ईमेज के लिए ऑटोफोकस और एलईडी फ्लैश की व्यवस्था है या नहीं, इस बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है. इसकी ऑनबोर्ड मैमोरी 128 एमबी है. मैमोरी को माइक्रो-एसडी कार्ड के ज़रिए 8 जीबी तक बढ़ाया जा सकता है. कनेक्टिविटी के लिए नोकिया 6760 में 3 जी, वाई-फाई, ए2डीपी के साथ 2.0 ब्ल्यूटूथ, माइक्रो यूएसबी पोर्ट, जीपीएस और ए-जीपीएस की सुविधा मौजूद है.

1500 एमएएच बैटरी की मदद से पांच घंटे तक बातचीत कर सकने का दावा किया गया है और स्टैंडबाई में हैं-20 दिन. नोकिया 6760 स्लाइड रेड, ब्लैक और व्हाइट यानी तीन रंगों में उपलब्ध है. इसकी क़ीमत है- 14,000 रुपये.

माइक्रोसॉफ्ट ने कहा याहू!

सर्च इंजनों के बाज़ार में एक नया तहलका होने वाला है. बाज़ार के दो बड़े खिलाड़ी अब साथ आ गए हैं. माइक्रोसॉफ्ट (एमएस) और याहू ने 10 साल के लिए एक नई डील की है. इसके हिसाब से याहू अब अपनी वेबसाइट से सर्च करने वालों को एमएस की बिंग सर्च इंज़न की सुविधा मुहैया कराएगा. बदले में याहू इन सर्च के ज़रिए विज्ञापनों से होने वाली कमाई में 88 फ़ीसदी की हिस्सेदारी पाएगा. इस तरह एमएस को जहां याहू के रास्ते नए सर्च ग्राहक मिलेंगे, वहीं याहू को विज्ञापनों से बड़ी कमाई होगी. इन दोनों के इस सौदे से सर्च इंज़न के बाज़ार में बड़ा उलटफेर देखने को मिल सकता है. इन दोनों के साथ आ जाने से गूगल की इस बाज़ार पर बादशाहत ख़तरे में पड़ सकती है. भारत में तो इन एमएस-याहू गठजोड़ और गूगल के बीच ज़ोरदार मुक़ाबला होने की उम्मीद है. सर्च इंजन बाज़ार में एमएस काफी दिनों से गूगल को टक्कर देने के लिए तैयारी कर रहा था. इससे पहले पिछले साल उसने याहू को ख़रीदने की असफल कोशिश की थी और इस साल अपना नया सर्च इंज़न बिंग बाज़ार में उतारा था, लेकिन यह सौदा उसकी सबसे बड़ी कामयाबी है. अब आगे क्या होता है देखना दिलचस्प होगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

एचपी ने लांच किया वायरलेस प्रिंटर

प्रिंटिंग करते वक़्त अपने सिस्टम से प्रिंटर को जोड़ने के लिए बार-बार तार जोड़ना, सच में परेशान करता है. ख़ासकर जब आप लैपटॉप पर या अलग-अलग सिस्टम पर काम करते हों. इस परेशानी से निज़ात पाने के लिए अगर आप कोई विकल्प तलाश रहे हों, तो आपके लिए ख़ुशख़बरी है. इस परेशानी को देखते हुए एचपी ने अपना नया वायरलेस प्रिंटर लांच करने की घोषणा की है. जी हां, एचपी ने ऑल-इन-वन प्रिंटर्स की श्रृंखला में फोटोस्मार्ट सी-4588 लांच करने की घोषणा की है. इसकी सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि इस छोटे प्रिंटर से यूजर्स बिना तार के प्रिंट, स्कैन और कॉपी कर सकते हैं. इस ऑल-इन-वन श्रृंखला को आप अपने नेटवर्क से आसानी से जोड़ सकते हैं. बस इसके लिए थोड़ी सी मेहनत करने की ज़रूरत है. यानी इसमें फोटो और स्कैन करने की जो इन-बिल्ट वायरलेस सुविधा है, उसे सक्रिय करना होगा. एचपी का यह फोटोस्मार्ट सी-4588 ऑल-इन-वन श्रृंखला बिना कंप्यूटर के भी फोटो प्रिंट करता है- इसके लिए आपको महज़ उसमें मैमोरी कार्ड डालना होगा. उसके बाद फोटो दिखाई देगा और उसे आप प्रिंट कर सकते हैं. इसका सहज मैमोरी कार्ड स्लॉट, तेज़ प्रिंटिंग स्पीड और फोटोस्मार्ट सॉफ्टवेयर रोज़ाना प्रिंटिंग, कॉपी, फोटो और स्कैनिंग के लिए काफी अच्छे और सुविधाजनक है. इसमें इन-बिल्ट वायरलेस 802.11 जी के द्वारा यूजर्स दूसरे वायरलेस नेटवर्क से भी जुड़ सकते हैं. इस छोटे से ऑल-इन -वन प्रिंटर में 1.5 इंच का कलर डिस्पले, मैमोरी कार्ड स्लॉट्स, रोज़ाना प्रिंटिंग और फोटो के लिए स्मार्ट वेब प्रिंटिंग की सुविधा है. इसमें 1.5 इंच के डिस्पले स्क्रीन के साथ ही वन-टच बटन है. इस छोटे से प्रिंटर में उनके लिए बहुत कुछ है जिनके कामकाज के लिए प्रिंटिंग ज़रूरी है. इसे ही कहते हैं गागर में सागर.

बच्चों के साथ उनके फैशन को भी जानिए

सोनिका अग्रवाल

आज के बच्चे, बड़ों की तरह व्यवहार ही नहीं, सोचने भी लगे हैं. इसलिए बड़ों की ज़रूरतें कम और बच्चों की बढ़ती जा रही हैं. नखरों की तो बात ही न करें. लेकिन फैशन की दुनिया में छोटे-बड़े का कोई फ़र्क़ नहीं है. यानी फैशन केवल बड़ों के लिए ही नहीं, बल्कि छोटे बच्चों के लिए भी ज़रूरी हो गया है. जिस तेज़ी से बड़ों की तरह फैशन ट्रेंड्स बदलते हैं, किड्स के फैशन ट्रेंड्स में बदलाव उससे अधिक गति से देखने को मिलता है. इसलिए उनके मिज़ाज भी माशाअल्लाह होते हैं. वे केवल अपने मन की सुनते हैं. जो अच्छा लगता है, वही पहनते हैं. माता-पिता के चुने हुए कपड़े बहुत कम पहनते हैं. अगर बच्चों को उनकी पसंद के कपड़े या चीज़ें न दिलाएं तो मुंह फुलाकर बैठ जाते हैं.

जानिए कि आपके लाड़लों के लिए इस मौसम में क्या है बेहतर

आजकल के बच्चों को सॉफ्ट पिंक, चटकदार हरा और पीले के साथ पेस्टल से लेकर हर चटकीले, दिलख़ुश रंग पसंद हैं. यह दमक केवल नन्हें सितारों की दुनिया में ही है. इस समय चाहे लड़कियों के स्कर्ट-टॉप हों या ट्रेंडी

कैपरी या लड़कों की जींस शट्र्स और टी-शट्र्स, सबमें ही ख़ुशनुमा रंगों की बहार है. लड़कियों में लाइम ग्रीन, येलो और पिंक कलर्स छाए हुए हैं, तो लड़कों में रेड, ब्लू, फिरोजी और ब्राउन का ट्रेंड अधिक देखने को मिल रहा है. बड़ों की तरह छोटे उस्ताद भी स्टाइल के मामले में पीछे नहीं हैं. तीन से दस साल की लड़कियों में हॉल्टर नेक्स, मिनी स्कर्ट्स और ट्राउजर्स की धूम मची है, तो वहीं शॉर्ट कुर्ते के साथ टाइट चूड़ीदार भी है. लड़कों के लिए इतने विकल्प उपलब्ध नहीं हैं, पर स्ट्रेट जैकेट के अलावा शॉर्ट शट्र्स और टी-शर्ट उपलब्ध हैं. बाज़ार में जाकर अगर देखा जाए तो बच्चों में जंप सूट्स की मांग भी लगातार बढ़ रही है. अगर कपड़ों की बात करें और प्रिंट की बात न हो तो यह कैसे हो सकता है. प्रिंट में लड़कियों की ड्रेसेज अधिक मिलती है. उनके लिए फूल, बड़े प्रिंट्स, बुके, सिंपल, बारीक और मिले-जुले प्रिंट्स से सजी ड्रेसेज बाज़ार में अधिक देखने को मिल जाएगी. इनमें ज्योमीट्रिक और पैचवर्क की डिज़ाइन की दखलंदाजी भी देखते ही क़ाबिले तारीफ़ लगती है. इनके अलावा मल्टी कलर्ड स्ट्राइप्स स्पॉट्स और पोल्का डॉट्स भी इस समय चलन में हैं. पार्टी के लिए भी बीडेड, एम्ब्रायडरी किए कपड़ों की बहार आई हुई है.

चूंकि बच्चों की त्वचा फूल-सी नाज़ुक होती है, इसलिए फैब्रिक भी उसी के अनुसार होना चाहिए. मसलन कॉटन और लिनेन जैसा. बच्चों के कपड़े जो डिज़ाइन करते हैं, उनका मानना है कि सिंथेटिक या ऐसे ही दूसरे फैब्रिक्स नाज़ुक त्वचा पर रैशेज ला सकते हैं. इसलिए बच्चों के लिए ऐसे कपड़ों का चुनाव करें जो मौसम के तालमेल से सही बैठते हों. इस मौसम के लिए कॉटन या हॉजरी सबसे अच्छा रहेगा. अगर आपके बच्चे को पार्टी में जाना है तो आप चूड़ीदार सूट, घाघरा-चोली या चूड़ीदार कुर्ता-पायजामा ले सकते हैं. फैब्रिक के मामले में सॉटन हो या सिल्क और रंगों में मरून, ब्राउन, रेड और ब्लू का चुनाव बेहतरीन है. आजकल तो वैसे पीजेंट्स टॉप्स फैशन की पहली पायदान पर हैं. कंधों और कलाइयों पर ढेर सारी चुन्नटें समेटे यह आकर्षक टॉप्स कैजुअल वियर में बेहद शानदान लगते हैं. अगर रंग ऑरेंज और येलो में मिल रहे हों तो यह टॉप्स ब्लू जींस या स्कर्ट पर खास लगते हैं. लेकिन यह याद रहे कि बच्चों के लिए किसी भी चीज़ का चुनाव करते समय ध्यान रखें कि वे भड़कीले लगने की जगह संभ्रांत लगने चाहिए. यह सब फैशन तो आपको बाज़ार में जाने पर ही पता चलेगा. फिर किस बात की देर, जाइए और अपने बच्चों के फैशन के अनुसार कपड़ों का चुनाव कीजिए.

sonika@chauthiduniya.com

वाडा पर क्रिकेट बोर्ड कर रहा है राजनीति

याद आता है वह समय, जब रोजर फेडरर और नडाल जैसे खिलाड़ियों ने सवाल किया था कि क्या हम अपराधी हैं? वे नाराज़ थे. वाडा की सख्तियों पर उन्हें आपत्ति थी. अब भी है. कुछ फेरबदल भी हुआ, लेकिन आख़िर में वही हुआ जो वाडा ने चाहा. वाडा की सख्ती पर अगर यह दलील दी जाए कि चोर चंद ही होते हैं, लेकिन इसे रोकने के लिए शरीफ लोगों पर भी सख्ती करनी पड़ती है, तो कुछ ग़लत नहीं होगा. नडाल अगर यह कहते रहे हैं कि हम क्यों अपनी दिनचर्या बताएं? ऐसा क्यों हो कि हम दो घंटे और सोना चाहते हैं और वाडा के अधिकारी इसी दौरान टेस्ट करने पहुंच जाएं और हमें उठना पड़े? आख़िर इतनी बंदिशें क्यों?

जो बात तब टेनिस खिलाड़ियों ने उठाई थी, आज वही क्रिकेटर उठा रहे हैं. क्रिकेट के साथ भी वाडा का जुड़ना ये सारी सख्तियां लाने वाला है. पहली नज़र में देखने पर सब कुछ खिलाड़ियों की ओर ही जाता है. अगर हरभजन सिंह या युवराज सिंह या सचिन तेंदुलकर कहीं घूमने जाना चाहते हैं, तो क्यों वाडा को यह जानकारी देने की ज़रूरत होनी चाहिए? आख़िर पर्सनल लाइफ भी तो कुछ होती है. आख़िर क्यों कोई ज़िंदगी अपनी मर्ज़ी से नहीं जी सकता. हरभजन तो पूछ सकते हैं कि क्या ड्रग्स लेने से उनकी ऑफ ब्रेक कुछ ज़्यादा टर्न होने लगेगी? क्रिकेट जिस तरह का गेम है, उसमें तेज गेंदबाजों के अलावा बाक़ी किसी को ड्रग्स का ज़्यादा फ़ायदा नहीं होने वाला. ऐसे में क्यों इतनी सख्ती की जाए कि दम घुटने लगे. लेकिन दलील वही है कि सोसायटी में बेईमान लोग भी हैं. उन्हें रोकने के लिए ज़रूरी है कि ईमानदार लोग सपोर्ट करें. इसीलिए भारतीय क्रिकेटर्स से भी हस्ताक्षर करने की उम्मीद की जा रही है.

फोटो-पीटीआई

सबसे पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि आख़िर वाडा का तरीक़ा क्या है. नियम के मुताबिक हर क्रिकेटर को अगले तीन महीने का प्रोग्राम देना होगा. इसमें हर रोज़ कम के कम एक घंटा वह कहां है, ये बताना होगा. नहीं समझ आता कि इसमें क्या परेशानी है. अगर आपको अपना प्रोग्राम बदलना है, तो इसके लिए मेल या एसएमएस करके वाडा को बताया जा सकता है. वाडा जिस तरह काम करता है, इसमें ये जानकारियां लीक होना बेहद मुश्किल है. जिस सुरक्षा व्यवस्था की दलील बीसीसीआई दे रहा है, उनसे सवाल बस यही है कि क्या इन खिलाड़ियों का प्रोग्राम लोगों को पता नहीं चलता. सचिन देहरादून में हों, मसूरी में, लंदन में या चेन्नई में-पता चल ही जाता है. ऐसे में अगर वह लंदन में हैं, तो वहां यह बता देने में क्या हर्ज़ है कि सुबह छह बजे से सात बजे तक मैं होटल में रहूंगा. यह महज़ एक उदाहरण है. लेकिन अपने एक घंटे के बारे में बताना कोई बहुत मुश्किल नहीं है. हालांकि इसमें दिक़्क़तें भी आती हैं. अगर आप तय समय में किसी जगह नहीं हैं और वाडा के अधिकारी वहां आ जाएं, तो इसे नियम का उल्लंघन माना जाता है. अगर तीन बार नियम का उल्लंघन हो, तो दो साल का प्रतिबंध लगाया जा सकता है. अंजू बी. जॉर्ज के साथ ऐसा हो भी चुका है. वह दो बार किसी वजह से वाडा अधिकारियों को नहीं मिल पाईं. लेकिन तीसरी बार उनका टेस्ट हो गया था. इस तरह की दिक़्क़तें क्रिकेटरों के साथ और ज़्यादा हो सकती हैं. लेकिन वाडा की भी मजबूरी है. वाडा की सख्ती के पीछे वजह भी है. जिस तरह के ड्रग्स आ गए हैं, उसमें सही समय पर टेस्ट न करने का मतलब होता है कि आप बेईमानों को नहीं पकड़ सकते. वजह यह है कि मास्किंग के इतने तरीक़े आ गए हैं कि ड्रग्स की वजह से प्रदर्शन तो बेहतर होता है, लेकिन ड्रग्स लिए व्यक्ति को पकड़ा नहीं जा सकता. इसमें कोई शक़ नहीं कि परेशानी होती है. लेकिन ये परेशानी क्या सिर्फ़ भारतीयों की ही है? हालांकि बाक़ी देशों के क्रिकेटर तो साइन करने को तैयार हैं. सच है कि भारत में यह खेल जुनून से कम नहीं. ऐसे में सुरक्षा की दिक़्क़तें आती हैं. लेकिन जब आप खेलने जाते हैं, तब भी तो कहीं बाहर जाने की जानकारी सुरक्षा अधिकारियों को देनी ही होती है. फिर यहां क्या दिक़्क़त है? भारतीय क्रिकेट बोर्ड फीफा का उदाहरण दे रहा है. लेकिन फीफा किसी देश का फुटबॉल संघ नहीं है. वह दुनिया में फुटबॉल चलाने वाली संस्था है. यहां आईसीसी ने 2006 में वाडा के नियमों को अपनाने का फ़ैसला किया था. बाक़ी देशों के क्रिकेटर साइन कर चुके हैं. ऐसे में सिर्फ़ भारतीय क्रिकेटरों पर आकर बात रुकती है. आख़िर क्यों भारतीय क्रिकेटरों को बाक़ी दुनिया के मुक़ाबले स्पेशल माना जाए. वाडा के नियमों को देखा जाए, तो आईसीसी के अगले इवेंट में वे भारतीय क्रिकेटर हिस्सा नहीं ले पाएंगे, जिनका नाम वाडा ने तय किया है. इसमें धोनी से लेकर सचिन और युवराज से लेकर हरभजन तक सभी हैं. हालांकि चर्चा चल रही है, इसलिए हाल-फ़िलहाल तो ऐसे हालात नहीं आएंगे. सवाल यही है कि आख़िर क्यों डेडलाइन पार करने की ज़रूरत पड़ी. अगर बीसीसीआई को यह मंज़ूर नहीं था, तो सहमति बनाने की ज़रूरत क्यों नहीं समझी गई? क्या इसलिए कि बीसीसीआई को ख़ुद के क्रिकेट का पावर हाउस होने का गुमान है? क्रिकेटरों की चिंता समझ में आती है. लेकिन यह भारतीय बोर्ड का रुख़ तो यही बताता है कि वह अपनी मर्ज़ी से सब कुछ चलाने की ग़लतफहमी पाले हुए हैं.

राकेश चतुर्वेदी
feedback@chauthiduniya.com

दादा की दूसरी पारी

फोटो-पीटीआई

भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) के पूर्व अध्यक्ष और बंगाल क्रिकेट संघ (कैब) के अध्यक्ष जगमोहन डालमिया और टीम इंडिया के पूर्व कप्तान सौरभ गांगुली फिर क़रीब आ रहे हैं. पिछले दिनों कोलकाता में सीएबी पदाधिकारियों के चुनाव में साफ दिखा कि सौरभ और डालमिया के बीच की दूरियां ख़त्म हो रही हैं. वैसे कुछ दिनों पहले जब दादा ने क्रिकेट प्रशासक के तौर पर कैब में आने की इच्छा जताई थी, तब उसे डालमिया को चुनौती के रूप में देखा गया था. लेकिन ऐसा हुआ नहीं. वैसे कोलकाता में कैब की सालाना बैठक में गांगुली आकर्षण का केंद्र ज़रूर बने रहे. वह मोहम्मडन स्पोर्टिंग के प्रतिनिधि के रूप में इसमें शामिल हुए. इसके साथ ही प्रशासक के तौर पर क्रिकेट में उनकी दूसरी पारी का भी आगाज हो गया. डालमिया का अध्यक्ष चुना जाना तभी तय हो गया था, जब उनके ख़िलाफ़ कोई भी प्रत्याशी अध्यक्ष पद के लिए चुनाव में नहीं उतरा. हालांकि, पहले यह माना जा रहा था कि गांगुली कैब के चुनाव में अध्यक्ष पद के लिए ख़ुद की दावेदारी पेश कर सकते हैं. लेकिन बाद में दादा दौड़ से हट गए. इसके बाद दादा और डालमिया ने एक-दूसरे के लिए तारीफ़ों के पुल बांधने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी. जहां गांगुली ने उन्हें महान क्रिकेट प्रशासक बताया, वहीं डालमिया ने भी गांगुली के प्रशासक के रूप में पारी शुरू करने का स्वागत किया. .

ग़ौरतलब है कि सौरभ के करियर में डालमिया की एक बड़ी भूमिका रही है. एक समय वह भी था, जब डालमिया को सौरभ के गॉडफादर के रूप में देखा जाता था. लेकिन डालमिया का ग्राफ नीचे आने के साथ ही दोनों के बीच फ़ासले आ गए. इसमें ग्रेग चैपल ने भी ख़ासी भूमिका निभाई थी. बहरहाल, अब दोनों फिर नज़दीक आ रहे हैं. इसकी वजह भी है. बीसीसीआई का अगला अध्यक्ष पूर्व क्षेत्र से होना है. कहा जा रहा है कि इसके मद्देनज़र डालमिया और दादा में एक अच्छी डील हुई है. डील के मुताबिक जैसी ख़बरें छन कर आ रही हैं, उसके मुताबिक डालमिया ख़ुद तो बीसीसीआई प्रमुख बनेंगे और बंगाल क्रिकेट समिति का प्रमुख गांगुली को बनाएंगे, ताकि बंगाल क्रिकेट को बेहतर शक्ल दी जा सके.

कोलकाता नाइट राइडर्स टीम (केकेआर) में गांगुली की फिर से कप्तान के रूप में वापसी के बाद यह भी कहा जा रहा है कि डालमिया-सौरभ और शाहरुख़ ख़ान की तिकड़ी के रूप में बंगाल क्रिकेट में एक नया पावर सेंटर बनने वाला है. कुछ दिन पहले ही जिस अंदाज़ में सौरव ने बीसीसीआई को आड़े हाथों लिया था, उससे लगता है कि दादा शायद अब डालमिया के साथ मिलकर अपनी आगे की लड़ाई लड़ने के मूड में हैं. इस बीच, कुछ गतिविधियां ऐसी हुई हैं जिनके कारण समय अब दादा के और अनुकूल होता हुआ लग रहा है. जिस केकेआर में दादा के दिन गिने-चुने रह गए थे, वहां अब उन्हें चुनौती देने वाला कोई नहीं बचा. कोच बुकैनन की छुट्टी पहले ही हो गई थी. अब कप्तान बैंडन मैकुलम ने आईपीएल से नाता तोड़ लिया है. मैकुलम शायद न्यूजीलैंड टीम के कप्तान बनने वाले हैं. अपनी राष्ट्रीय टीम के कप्तान बनने में आईपीएल को बाधा न बनने देने के लिए ही उन्होंने यह फ़ैसला किया है.

दुरुस्त आए लेकिन बड़ी देर से

फोटो-सुनील मल्होत्रा

अक्सर ऐसा होता है कि हमारा सिस्टम किसी सीधे और सही काम को करने के लिए ऐसे टेढ़-मेढ़े रास्ते अपनाता है कि उसकी काम की अहमियत और उसकी अपनी विश्वनीयता दोनों कम हो जाती हैं. ऐसा ही कुछ खेल रत्न पुरस्कार के मामले में भी हुआ. खेल मंत्रालय ने इस बार तीन लोगों को राजीव गांधी खेल रत्न पुरस्कार देने का फ़ैसला किया है. फ़ैसला क़ाबिल-ए-तारीफ़ है, लेकिन जिस रास्ते इस फ़ैसले तक पहुंचा गया, वह तारीफ़ के क़ाबिल नहीं. पहले महिला मुक्केबाज़ मैरीकोम को यह पुरस्कार देने की घोषणा की गई थी. ओलंपिक में मेडल जीतने वाले सुशील कुमार और विजेंदर को विशेष मामले के तौर पर रखा गया. एकबारगी तो लगा कि पद्म पुरस्कारों की तरह यहां भी हमारे मेडल जीतने वाले नज़रअंदाज़ कर दिए जाएंगे. लेकिन शायद यह मीडिया के दबाव का नतीजा रहा या भारतीय खेल मंत्रालय में अभी भी थोड़ी कॉमन सेंस बाक़ी है कि आख़िरकार खेल मंत्रालय को राजीव गांधी खेल रत्न पुरस्कार के लिए विजेंदर और सुशील की भी याद आ ही गई. चलिए, देर आए लेकिन दुरुस्त आए. आख़िरकार सरकार ने भी उनकी उपलब्धियों को मान लिया.

खेल रत्न के तीनों विजेता मैरीकोम, विजेंदर और सुशील साधारण परिवार से संबंधित हैं, लेकिन उन्होंने जो उपलब्धियां प्राप्त की है वह असाधारण है. एमसी मैरीकोम, विजेंदर सिंह और सुशील कुमार को राजीव गांधी खेल रत्न देने की घोषणा कोई बड़ा आश्चर्य नहीं है. खेलों के मामले में खेल मंत्रालय द्वारा दिया जाने वाला यह देश का सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार है. इस बार मंत्रालय ने परंपरा में बदलाव करते हुए इस पुरस्कार के लिए तीनों के नाम की घोषणा कर दी. ऐसा पहली बार हुआ है जब तीन लोगों को एक साथ राजीव गांधी खेल रत्न देने का फ़ैसला किया गया. इससे पहले सिर्फ़ दो बार दो-दो खिलाड़ियों- 1996 में लिएंडर पेस और एन कुंजरानी, 2002 में अंजली भागवत और केएम बीनामोल- को यह पुरस्कार सम्मिलित रूप से दिया गया. 1994 में होमी मोतीवाले और पीके गर्ग (टीम) को भी यह पुरस्कार एक टीम के तौर पर दिया गया था. मंत्रालय ने पहले ही चार बार महिला बॉक्सिंग वर्ल्ड चौंपियन विजेता मैरीकोम को यह पुरस्कार देने का फ़ैसला कर लिया था. ओलंपिक कांस्य पदक विजेता मुक्केबाज़ विजेंदर और पहलवान सुशील को उनके बेहतरीन प्रदर्शन के चलते भी विशेष मामले के तौर पर यह पुरस्कार देने का फ़ैसला नामांकित किया गया था. ओलंपिक विजेताओं को सीधे खेल रत्न न देने के मामले पर मीडिया और पूर्व खिलाड़ियों में काफी सवाल खड़े किए गए थे. तीनों को यह पुरस्कार दे खेल मंत्रालय ने अपनी गर्दन बचा ली. हालांकि अगर तीनों को ही पुरस्कार मिलना था तो विशेष मामले का पचड़ा बेकार ही फंसाया ही गया. साथ ही खेलों की वार्षिक सम्मान सूची में सरकार ने 15 अर्जुन पुरस्कार, चार द्रोणाचार्य पुरस्कार और दो ध्यान चंद पुरस्कार देने की भी घोषणा की है. ये पुरस्कार राष्ट्रीय खेल दिवस के अवसर पर 29 अगस्त को राष्ट्रपति भवन में दिए जाएंगे. खेल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने के लिए संस्था, कोच और खिलाड़ियों के अलावा सरकार ने इस वर्ष से राष्ट्रीय खेल प्रोत्साहन पुरस्कार देने की घोषणा की है . इस पुरस्कार को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है : सामुदायिक खेल विकास, स्पोर्ट एकेडमी का प्रोत्साहन, अच्छे खिलाड़ियों की मदद और खिलाड़ियों को रोज़गार.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

भारत ने जीता इमर्जिंग प्लेयर्स का ख़िताब

इमर्जिंग प्लेयर्स क्रिकेट टूर्नामेंट का ख़िताब जीत कर भारत ने साबित कर दिया कि वह विश्व क्रिकेट में सबसे ताक़तवर बन रहा है. हाल के वर्षों में टीम इंडिया तो लगातार अच्छा प्रदर्शन कर ही रही थी, अब सुरक्षित खिलाड़ियों से बनी दूसरी टीम ने भी लोहा मनवाना शुरू कर दिया है. विश्व क्रिकेट में कभी ऐसा रुतबा वेस्टइंडीज और आस्ट्रेलिया का था, लगभग वैसा ही मुक़ाम भारत भी पाता लग रहा है. एक दिवसीय मैचों को लेकर अभी-अभी जारी हुई आईसीसी की ताज़ा रैंकिंग में भारत दूसरे नंबर पर आ गया है. इस सालाना रैंकिंग में मात्र एक अंक अधिक लेकर दक्षिण अफ्रीका पहले नंबर पर है. आस्ट्रेलिया तीसरे पायदान पर लुढ़क गया है. और यह सब हो रहा है इसलिए कि सीनियर ही नहीं, जूनियर लेवल पर भी भारत के पास प्रतिभावान क्रिकेटरों की लंबी सूची है. ब्रिसबेन में इमर्जिंग प्लेयर्स क्रिकेट टूर्नामेंट के फाइनल मैच में पहले बल्लेबाजी करने उतरी भारतीय टीम ने विराट कोहली के 104 और विकेटकीपर बल्लेबाज वृद्धिमान शाह के 74 रनों की पारी से दक्षिण अफ्रीका को 283 रन का लक्ष्य दिया. लक्ष्य का पीछा करने उतरी दक्षिण अफ्रीका की पूरी टीम 46.2 ओवर में 266 रन पर ढेर हो गई. सुदीप त्यागी ने 72 रन देकर चार विकेट चटकाए. वैसे फाइनल में भारतीय टीम की शुरुआत अच्छी नहीं रही. दक्षिण अफ्रीका के तेज़ गेंदबाज लोनवाबे सोतसोबे ने फार्म में चल रहे अजिंक्य रहाणे को छह रन और अगली गेंद पर मुरली विजय को शून्य पर पगबाधा आउट कर भारत को मुश्किल में डाल दिया था. अगर देखा जाए तो इस पूरे टूर्नामेंट में सभी खिलाड़ियों ने शानदार प्रदर्शन किया. सीनियर हो या जूनियर, मैदान पर सबने अपना सौ फ़ीसदी दिया. खिलाड़ियों ने बल्लेबाजी, गेंदबाजी और क्षेत्ररक्षण सभी में सुधार कर उम्दा प्रदर्शन किया. इसकी सराहना लगभग सभी लोगों ने की. इसी का नतीजा रहा है कि हमने टी-ट्वेंटी का पहला विश्व कप और अंडर-19 विश्व कप पर क़ब्ज़ा किया. हालांकि 2009 के टी-ट्वेंटी विश्व कप में भारतीय क्रिकेट टीम ने उम्मीद के अनुसार प्रदर्शन नहीं किया, जिससे उसकी काफी आलोचना हुई थी. बहरहाल, जूनियर खिलाड़ियों के अच्छे प्रदर्शनों ने राष्ट्रीय टीम के चयनकर्ताओं का काम मुश्किल कर दिया है. पहले यह अहम सवाल हुआ करता था कि पुराने के स्थान पर कौन आएगा. लेकिन अब स्थिति बिल्कुल उल्ट गई है. एक के बदले चार-चार दावेदार उभर कर आ रहे हैं. ये नए खिलाड़ी ज़रूरत पड़ने न सिर्फ़ उम्दा प्रदर्शन कर रहे हैं, बल्कि टीम को जीत भी दिला रहे हैं. इसका ताज़ा प्रमाण है इमर्जिंग प्लेयर्स क्रिकेट टूर्नामेंट का ख़िताब. इस टूर्नामेंट में कोहली ने दो शतक और दो अर्धशतकों की मदद से टूर्नामेंट में सबसे अधिक 398 रन बनाए, जबकि त्यागी ने छह मैचों में 14 विकेट चटकाए. स्पिनर अमित मिश्रा ने भी शानदार खेल दिखाया.

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

नेहा चलीं परदेस

एक समय था, जब हिंदी फिल्मों के फ्लॉप स्टार घर बचाने के लिए दक्षिण का रुख़ कर लेते थे. कुछ ऐसे भी होते थे, जो भोजपुरी और बंगाली जैसी क्षेत्रीय फिल्मों की शरण में चले जाते थे. लेकिन वैश्वीकरण के इस दौर में उनके लिए बाज़ार और बड़ा हो गया है. अब विदेशी बाज़ार में सिर्फ़ हिंदी फिल्में ही नहीं बिकतीं, स्टारों को काम भी मिलने लगा है. मिसाल के तौर पर नेहा धूपिया को ही लें. हिंदी सिनेमा में बहुत हाथ-पैर मारे, लेकिन बी-ग्रेड हीरोइन के ठप्पे से कभी मुक्त नहीं हो पाईं. यूं कहने को मिथ्या जैसी एकाध फिल्मों में उन्होंने काम भी ठीक-ठाक कर लिया था, फिर भी अवसर मुंह ही चिढ़ाते रहे. कहते हैं कि इच्छा से अधिक बलवान समय होता है. और, यह समय हिंदी फिल्मोद्योग में उनका साथ कतई नहीं दे रहा था. लिहाज़ा, उन्होंने परदेस का रुख़ कर लिया है. वह अमेरिका में एक रियलिटी शो से जुड़ गई हैं. इस शो में वह हॉलीवुड के अव्वल दर्जे के कलाकार कीनू रीव्स और ड्रू बैरीमोर के साथ काम करेंगी. वह चाहें तो इस बात पर संतोष कर सकती हैं कि उनके इस शो का विषय मुंबई की फिल्म इंडस्ट्री है, और इस तरह बॉलीवुड से तार तो जुड़ा ही रहेगा. इसमें वह अभिनेत्री लालिमा के किरदार में नज़र आएंगी. वैसे देखा जाए तो बॉलीवुड में नेहा ने अपनी छवि ख़ुद ही ख़राब की है. वह फिल्मों में केवल सेक्स सिंबल और आइटम गर्ल बन कर रह गई थीं. शायद उन्होंने सोचा था कि चर्चा में बने रहने के लिए ऐसा करना ज़रूरी है. लेकिन वैसा नहीं हुआ, जैसा उन्होंने सोचा था. यहां तक कि मिथ्या, सिंह इज किंग, दसविदानियां और महारथी जैसी फिल्मों में काम करने के बाद भी उन्हें कोई ख़ास लाभ नहीं हुआ.

कृपया अपने सबस्क्रिप्शन चेक अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के नाम पर अपने नाम और पूरे पते के साथ यहां भेजें : (गैनन) के-2, दूसरी मंज़िल, चौधरी बिल्डिंग, मिडिल सर्किल, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली -110001

वार्षिक शुल्क :1000 रु.

आ सकता है स्वयंवर का दूसरा पार्ट

तो क्या हमें राखी के *स्वयंवर* का पार्ट-2 भी देखना पड़ेगा? यह सवाल वहां से उठा है, जहां बीते दो अगस्त को *राखी का स्वयंवर* समाप्त हुआ था. इसलिए कि घोषणा के मुताबिक राखी सावंत ने उस इलेश परूजनवाला के साथ सात फेरे नहीं लिए, जिन्हें उन्होंने अपने वर के रूप में चुना. वरमाला हुई और सगाई की अंगूठी भी पहनाई गई. लेकिन वह नहीं हुआ, जिसके इंतज़ार में लोग महीनों से रात में नौ बजते ही *एनडीटीवी-इमैजिन* से चिपक कर बैठ जाते थे. राखी का दर्शकों को मूर्ख बनाने का यह खेल *एनडीटीवी इमैजिन* के लिए काफी लाभदायक रहा. इस एक रियलिटी शो से इस चैनल की टीआरपी बहुत बढ़ गई. शायद इस शो की सफलता को देख कर ही इसे नए सिरे से फिर शुरू करने का ख़याल आ रहा है. वरमाला कार्यक्रम के बाद *स्वयंवर-2* का ज़िक्र ख़ुद राखी ने भी किया था. और तो और, स्वयंवर जीतने वाले इलेश अपने भोलेपन में यहां तक कह गए कि अब तक तो मैं वही करता और बोलता था, जो लिख कर दिया जाता था, लेकिन आज मैं दिल की बात करता हूं... इसमें कोई दो राय नहीं कि राखी ने अपना वर चुन लिया है. लेकिन उनका यह फ़ैसला अंतिम नहीं है. वह स्वयंवर जीतने वाले और टोरंटो से आए अनिवासी भारतीय इलेश को तीन महीने और आज़माएंगी. इसलिए कि कहीं इलेश भी पर्दे के बाहर उनके कुछ पुराने मित्रों की तरह ही न निकल जाएं. दरअसल यह परेशानी ख़ुद राखी की है. वह यक़ीन ही नहीं कर पा रही हैं कि कोई इतना सच्चा भी हो सकता है. कहते भी हैं कि *अपने मन से जानिए पराए दिल का हाल*. तो क्या राखी को अपना *पल में तोला-पल में माशा* वाला व्यवहार ने उन्हें इतना संदेही बना दिया है कि तय घोषणा के बावजूद कैमरे के सामने, पूरी दुनिया के सामने सात फेरे लेने का साहस नहीं कर सकीं! वैसे, जब इस पूरे आयोजन में उन्होंने अपनी मां और परिवार के अन्य सदस्यों को नहीं बुलाया था, तभी सब कुछ ठीक नहीं चलने का पता चल गया था.

बहरहाल, अंतिम तीन में पहुंचे दिल्ली के क्षितिज जैन को तो उन्होंने ख़ूब पागल बनाया. उनके परिवार के साथ बहुत मेल-जोल बढ़ाया. यहां तक कि क्षितिज की मां को लग रहा था कि राखी उनकी ही बहू बनेंगी, पर ऐसा हो न सका. ऐसा ही हाल दिल्ली के मानस कात्याल का भी रहा. वह उम्र में राखी से सात साल छोटे थे. राखी चाहतीं तो उन्हें पहले ही स्वयंवर से बाहर कर सकती थीं, लेकिन उन्होंने मानस की मासूमियत के साथ भी ख़ूब खेला.

फोटो-*पीटीआई*

सोनिका अग्रवाल
sonika@chauthiduniya.com

अब जंगल में मंगल!

यह तो होना ही था. जब एक साथ कई-कई रियलिटी शो चलेंगे तो दर्शक कहां से मिलेंगे. दर्शक बटोरने में स्टार प्लस का रियलिटी शो-सच का सामना-सबसे आगे चल रहा है. उसके मुक़ाबले छोटे पर्दे की आधा दर्जन से अधिक हस्तियों के होते हुए भी सोनी का मुझे इस जंगल से बचाओ काफी पिछड़ गया है. इतना कि चैनल वालों ने निर्माताओं को इसे शीघ्र समेटने तक की चेतावनी दे डाली. दुकान इस तरह और इतनी जल्दी बंद करने की नौबत देख निर्माताओं ने इसमें कई तरह की छौंक लगाई है. सबसे बड़ा तड़का लगा है-सेक्स का. इसके लिए मसाले के रूप में जहां नार्वे की मॉडल निगार ख़ान पिछले दिनों लाई गईं, वहीं विवादास्पद पंजाबी गायक मीका सिंह का भी सहारा ले लिया गया है. साथ में लक फिल्म में काम कर चुकी अभिनेत्री चित्राशी रावत और छोटे पर्दे के बड़े स्टार जय भानुशाली हैं सो अलग. निगार को छोड़ बाक़ी सबने वाइल्ड कार्ड से एंट्री ली है. वैसे निगार को शुरुआती दस प्रतिभागियों में ही रखा गया था, लेकिन वीज़ा और वर्क परमिट के फेर में वह तब इसमें शामिल नहीं हो सकीं. ऐसे में उनकी जगह दी गई थी अनुराधा बाली उर्फ़ फ़िज़ा को. उम्मीद थी कि फ़िज़ा शो में कुछ अलग तरह की सनसनी पैदा करेंगी, जो नहीं हो सका. लिहाज़ा, वोटिंग के ज़रिए उन्हें जल्द ही बाहर कर दिया गया. बाद में श्वेता तिवारी को निगार ने रिप्लेस किया. अब निगार, मीका, जय और चित्राशी पर शो को चर्चित करने की भारी ज़िम्मेदारी है. जय ने तो कह भी दिया है कि जब इसमें लड़कियां कपड़े उतारने लगी हैं, तो फिर लड़के क्यों पीछे रहेंगे. यहां बताते चलें कि जय शाकाहारी हैं और शो में जो टास्क दिए जाते हैं, उनमें कई बार कीड़े-मकोड़ों को खाना भी होता है. बहरहाल, सोनी को उम्मीद है कि निगार और मीका के आने से उनके शो के लिए दर्शकों का टोटा नहीं पड़ेगा.

अरुणोदय का आगमन

नेताओं के परिवारों से अभिनेता बनने वालों की सूची छोटी ही सही, लेकिन पुरानी है. इसमें नया नाम शामिल हो रहा है-अरुणोदय का. वह कांग्रेस के सीनियर नेता अर्जुन सिंह के पोते हैं. फिल्मी करियर की शुरुआत उन्होंने नकारात्मक भूमिका से की है. यानी वह खलनायक बने हैं. फिल्म का नाम है-सिकंदर. इसे पीयूष झा बना रहे हैं. अरुणोदय इसमें कश्मीरी आतंकवादी बने नज़र आएंगे. इसमें परज़ान दस्तूर और आयशा कपूर भी हैं. यह एक थ्रिलर फिल्म है. बहरहाल, अरुणोदय की मानें तो फिल्मी करियर बनाने में अर्जुन सिंह की ओर से कोई मदद नहीं मिली है. उनके मुताबिक उनके दादा शायद ही किसी फिल्म वाले को जानते तक हैं. अभिनेता बनने का फ़ैसला पूरी तरह उनका अपना है. इसके लिए उन्होंने अमेरिका तक में पढ़ाई की है. वहां इस सिलसिले में उन्होंने कई तरह के कोर्स भी किए हैं. चलिए, देखते हैं कि जिस तरह राजनीति में अर्जुन सिंह ने शिखर को छूआ था, उसी तरह बॉलीवुड में अरुणोदय कोई करिश्मा कर पाते हैं या नहीं.

हां...भुला न पाओगे

टेलीविजन की दुनिया में रियलिटी शो ने ट्वेंटी-20 क्रिकेट जैसा रुतबा हासिल कर लिया है. टेस्ट मैच जैसे लंबे और ऊबाऊ सास-बहू वाले सीरियलों का ज़माना लगता है कि वाकई लद गया. शायद इसीलिए कई चैनलों पर अलग-अलग विषयों पर रियलिटी शो एक साथ शुरू हो गए हैं. कुछ शुरू भी होने वाले हैं, जिनमें ख़तरों के खिलाड़ी सीज़न-2 प्रमुख है. यह सितंबर में शुरू होगा. इसे पिछली बार की तरह ही अक्षय कुमार प्रस्तुत करेंगे. बहरहाल, ख़बर यह नहीं है कि यह कब शुरू होने वाला है और कौन होस्ट करेगा. ख़बर यह है कि इसमें भाग न लेते हुए भी सैफ़ अली ख़ान की मौजूदगी बनी रहेगी. किसी की यादों में तो किसी की हमशक्ल में. ऐसा होगा रोज़ा कैटालानो के कारण.

जैसा कि सब जानते ही हैं कि रोज़ा छोटे नवाब का पुराना प्यार हैं. अब इसे संयोग कहें या कुछ और कि रोज़ा को जो पार्टनर मिला है, उसकी शक्ल सैफ़ से काफी हद तक मिलती है. अपने पार्टनर प्रशांत कुमार को देख एक बार तो रोज़ा ख़ुद सोच में पड़ गईं. वह मानती भी हैं कि सैफ़ से प्रशांत की इतनी समानता से वह हैरान हैं. लगे हाथ वह यह भी सफाई देती हैं कि प्रशांत का चयन उनसे पहले हो चुका था. उनके मुताबिक इस शो में भाग लेने वाली लड़कियों के पार्टनर पहले तय हो चुके थे. तो क्या सचमुच यह संयोग है कि रोज़ा को बतौर पार्टनर सैफ़ का हमशक्ल मिला. जो भी हो, रोज़ा प्रशांत की जोड़ी को देखना दिलचस्प रहेगा. पता नहीं, करीना कपूर इस रियलिटी शो को देखने का साहस जुटा पाएंगी या नहीं.

नहीं गली दाल विशाल की

संगीतकार से निर्देशक बने विशाल भारद्वाज की नाराज़गी देख कर लगता है कि शायद उन्हें पहली बार सेंसर बोर्ड की ताक़त का अहसास हुआ है. दरअसल, शाहिद कपूर-प्रियंका चोपड़ा स्टारर उनकी नई फिल्म-कमीने-को सेंसर बोर्ड ने ए-सर्टिफिकेट दे दिया है. यानी उसने इसे सिर्फ़ वयस्कों के देखने लायक फिल्म घोषित कर दिया है. इससे विशाल बहुत नाराज़ हैं. उन्होंने इसकी शिकायत सेंसर बोर्ड की अध्यक्ष शर्मिला टैगोर तक से की. लिहाज़ा रिव्यू कमेटी ने भी दिल्ली में इस फिल्म को नए सिरे से देखा. कमीने को रिव्यू कमेटी के सदस्यों के साथ ख़ुद शर्मिला टैगोर ने भी देखा. बावजूद इसके, बात नहीं बनी. रिव्यू कमेटी ने भी फ़ैसला सुना दिया कि हिंसा की अधिकता को देखते हुए इसे ए-सर्टिफिकेट देना ही सही है. विशाल ने काफी कोशिश की कि कमीने को यू-ए सर्टिफिकेट मिल जाए, पर शर्मिला टैगोर तक इससे सहमत नहीं हुईं. दरअसल सेंसर बोर्ड का कहना था कि बात सिर्फ़ हिंसा की अधिकता की ही नहीं, उसके स्तर की भी है. दूसरी ओर, निर्देशक विशाल भारद्वाज और निर्माता यूटीवी का कहना है कि चूंकि फिल्म अंडरवर्ल्ड पर आधारित है, लिहाज़ा हिंसा के प्रदर्शन को समझा जाना चाहिए. लेकिन, सेंसर बोर्ड अपने फ़ैसले को बदलने को राजी नहीं है. इस बीच, कमीने के प्रोमो टेलीविजन पर आने लगे हैं. जबकि ए-सर्टिफिकेट वाली फिल्मों के प्रोमो टेलीविजन पर दिखाने पर मनाही होती है. इतना ही नहीं, ऐसी फिल्मों के प्रोमो सिनेमाघरों में किसी अन्य फिल्म के बीच भी तभी दिखाए जा सकते हैं, जब वह फिल्म भी ए-सर्टिफिकेट वाली हो. ऐसे में लगता है कि विशाल के लिए आने वाले दिन कुछ और क़ानूनी दांवपेचों वाले हो सकते हैं.

खली मचाएंगे खलबली

अगर आप रियलिटी शो के दीवाने हैं, तो दिल थाम कर बैठिए. जल्द ही आपको छोटे पर्दे के नामी पहलवान भी रियलिटी शो करते नज़र आएंगे. जी हां, छोटे पर्दे पर दिखने वाले पहलवानों में अपने भीमकाय खली भी होंगे. गीत-संगीत और नृत्य के ज़रिए तड़का लगाते हुए इस शो को होस्ट करेंगी हार्ड कौर. वही हार्ड कौर, जिन्होंने पिछले दिनों झलक दिखला जा में अपने हिप-हॉप से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया था. सूत्रों की मानें तो इस शो की शूटिंग दक्षिण अफ्रीका में शुरू भी हो चुकी है. हार्ड कौर इस शो को लेकर बहुत उत्साहित हैं. उनका कहना है कि वह डब्लूडब्लूएफ जैसे खेलों को ख़ूब पसंद करती रही हैं. खली की तो वह बहुत बड़ी फैन भी हैं. इसलिए भी कि दोनों पंजाब से हैं और दोनों ने बाहर रहकर ही नाम कमाया है. तो सलमान ख़ान और राजीव खंडेलवान जैसों को भूलने के लिए तैयार हैं आप?

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com